मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 31 ● वर्ष 4 ● अंक 3 ● मई 2014 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

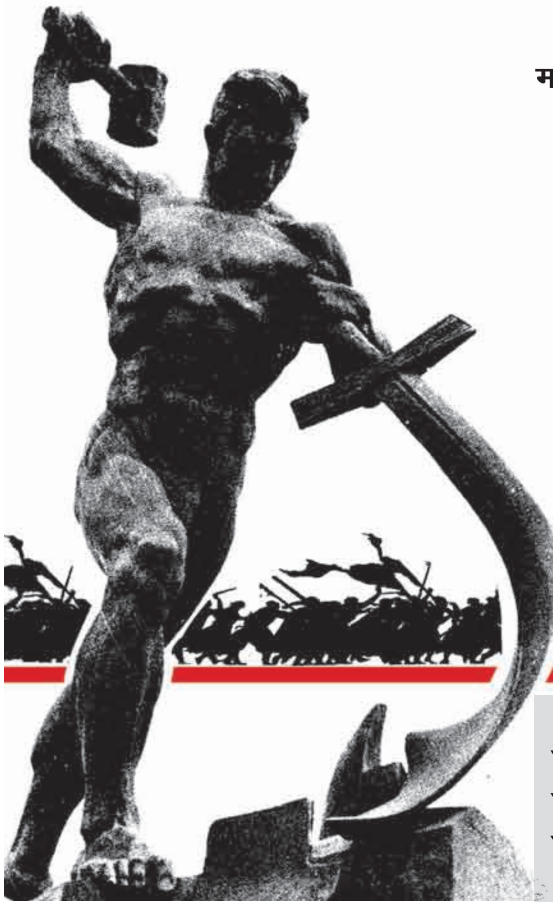

मज़दूर बिगुल

श्रीराम पिस्टन, भिवाड़ी के मज़दूरों के आक्रोश का विस्फोट और पुलिस दमन 3

तुर्की में खदान हादसे में सैकड़ों मज़दूरों की मौत : मुनाफ़ाख़ोरों के हाथों एक और हत्याकाण्ड 5

भगाणा काण्ड : हरियाणा में बढ़ते दलित और स्त्री उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष की एक मिसाल 16

मोदी की जीत और मज़दूर वर्ग के लिए इसके मायने

आने वाली कठिन चुनौती का सामना करने के लिए ग़रीब और मेहनतकश अवाम को कमर कस लेनी होगी

सम्पादक मण्डल

सोलहवीं लोकसभा चुनावों में नरेन्द्र मोदी की अगुवाई में भाजपा गठबन्धन की भारी जीत अप्रत्याशित नहीं है। जैसाकि 'मज़दूर बिगुल' के पन्नों पर हम पहले भी कहते आ रहे थे, पूँजीवादी व्यवस्था का संकट उसे लगातार एक फासीवादी समाधान की ओर धकेल रहा है। पूँजीवाद का दायरा आज केवल नवउदारवादी नीतियों पर अमल की ही इजाज़त देता है। इन नवउदारवादी नीतियों को कड़ाई से लागू करने के लिए एक ज़्यादा से ज़्यादा निरंकुश सर्वसत्तावादी शासन की ज़रूरत है, इसलिए भारतीय पूँजीपति वर्ग की पहली पसन्द भाजपा गठबन्धन ही था। बहुत पहले ही देश के तमाम बड़े पूँजीपतियों ने ऐलान कर दिया था कि वे मोदी को ही प्रधानमंत्री देखना चाहते हैं। अम्बानी, अडानी, टाटा, बिड़ला सहित सभी पूँजीपति घरानों ने हर तरह से मोदी के प्रचार अभियान का साथ दिया। पूँजीपतियों के स्वामित्व वाले सभी समाचार चैनलों और अख़बारों-पत्रिकाओं ने मोदी के पक्ष में जमकर हवा बनायी। अरबों रुपये ख़र्च करके देशी-विदेशी पी.आर. कम्पनियों द्वारा इंटरनेट पर सोशल मीडिया के ज़रिये भी धुआँधार प्रचार किया गया। बुर्जुआ संसदीय प्रणाली में अन्ततोगत्वा पूँजी ही निर्णायक सिद्ध होती है। यदि शासक वर्ग लगभग आम सहमति से मोदी के पक्ष में था, तो नतीजे ऐसे ही आने थे।

ज़ाहिर है, इन नतीजों से सबसे अधिक ख़ुश देश के तमाम पूँजीवादी घराने ही हैं। मोदी के जीतने की सम्भावनाओं पर ही दो दिन पहले से शेयर बाज़ार में सेंसेक्स ऊपर चढ़ने लगा था और 16 मई को तो उसने सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये। तमाम बिज़नेस चैनलों पर पूँजीपतियों से अपनी ख़ुशी छिपाये नहीं छिप रही थी। ख़ुशी से पगलाये बिज़नेस चैनलों ने नयी सरकार का एजेंडा भी बताना शुरू कर दिया। सबसे पहले जो फ़ाइलें निपटानी हैं उनमें ख़ास हैं – गैस के दाम बढ़ाना, रक्षा क्षेत्र में विदेशी पूँजी निवेश, बीमा क्षेत्र में विदेशी भागीदारी 26 प्रतिशत से बढ़ाकर 49 प्रतिशत करना, टैक्स में सुधार यानी अमीरों से लिये जाने वाले प्रत्यक्ष कर घटाना और अप्रत्यक्ष कर बढ़ाना जिसकी वसूली ग़रीबों से होती है, विनिवेश को तेज़ करना यानी बचे-खुचे सरकारी उद्योगों को निजी हाथों में बेचना, आदि-आदि। कहने की ज़रूरत नहीं कि इन सबकी क़ीमत देश की आम मेहनतकश आबादी की हड्डियाँ निचोड़कर ही वसूली जायेगी। चुनावों में लगभग 40,000 करोड़ रुपये का जो भारी खर्च हुआ है, जिसमें करीब 10,000 करोड़ रुपये का ख़र्च अकेले मोदी के प्रचार पर बताया जा रहा है, उसकी भरपाई भी तो आम जनता को ही करनी है।

जो लोग समझ रहे थे कि भाजपा के सत्ता में नहीं होने से उसका आधार कमज़ोर पड़ गया था, वे भारी ग़लतफ़हमी में थे। आरएसएस अपने तमाम संगठनों के ज़रिये लगातार अपना काम करता रहा है और अपने प्रचार के ज़रिये पिछले दस वर्षों के कांग्रेसी राज में जनता के असन्तोष का फ़ायदा उठाकर उसने समाज में अपनी पैठ और बढ़ायी है। भूलना नहीं होगा कि नवउदारवादी नीतियों को लागू करने की शुरुआत देश में कांग्रेस ने ही की थी और पिछले दस वर्षों के दौरान भी उसने इन्हीं नीतियों को आगे बढ़ाया था। लेकिन वैश्विक आर्थिक संकट के बीच पूँजीपति वर्ग को हर तरह के विरोध को कुचलकर जितनी कठोरता के साथ इन नीतियों पर अमल करवाने की ज़रूरत थी वैसा करने में वह पिछड़ गयी। एक तरफ़ पूँजीपतियों का चहेता बने रहने और दूसरी तरफ़ चुनाव जीतने के लिए लोकलुभावन बातें और योजनाएँ पेश करने के बीच झूलते रहने के कारण पूँजीपतियों का बड़ा हिस्सा उससे निराश हो गया था। घनघोर वित्तीय संकट के चलते उसकी लोकलुभावन घोषणाएँ भी हवा में ही रह गयीं।

(पेज 13 पर जारी)

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के औद्योगिक इलाक़ों में सतह के नीचे आग धधक रही है!

दिल्ली से करीब 60 किलोमीटर दूर भिवाड़ी के औद्योगिक क्षेत्र में 'श्रीराम पिस्टन एण्ड रिंग्स' के मज़दूरों का बर्बर दमन और मज़दूरों के आक्रोश का विस्फोट एक अकेली घटना नहीं बल्कि ऐसी अनेक घटनाओं के सिलसिले की एक कड़ी है। (इसकी पूरी रिपोर्ट देखें, पृष्ठ 3 पर) राष्ट्रीय राजधानी के चारों ओर, सैकड़ों वर्ग किलोमीटर में फैले दर्जनों औद्योगिक क्षेत्रों के हज़ारों छोटे-बड़े कारख़ानों में काम करने वाले दसियों लाख मज़दूर भयंकर दमघोंटू माहौल में बेतरह शोषणकारी स्थितियों में काम कर रहे हैं। उनके लिए किसी भी श्रम क़ानून का कोई मतलब नहीं है, कोई सामाजिक सुरक्षा उनके हिस्से में नहीं आती। उनकी मेहनत को कौड़ियों के मोल ख़रीदा जाता है और उनके स्वास्थ्य तथा उनकी ज़िन्दगी की मानो कोई क़ीमत ही नहीं होती। मगर मज़दूर सबकुछ चुपचाप बर्दाश्त करते रहने के लिए अब तैयार नहीं हैं। आक्रोश सुलग रहा है और बीच-बीच में फूट पड़ता है, आने वाले दिनों का संकेत देता हुआ। मैनेजमेण्ट और पुलिस-प्रशासन द्वारा नग्न दमन-उत्पीड़न से कुछ समय के लिए इसे शान्त भले ही कर दिया जाये लेकिन इसकी लपटें सतह के नीचे फैलती जा रही हैं।

श्रीराम पिस्टन फ़ैक्टरी में भी श्रमिक-अशान्ति की स्थिति पिछले कई महीनों से बनी हुई है। यहाँ गुड़गाँव-मानेसर-बावल-खुशखेड़ा -भिवाड़ी औद्योगिक पट्टी की 1000 से भी अधिक आटोमोबाइल और आटो पार्ट्स बनाने वाली छोटी-बड़ी कम्पनियों की ही तरह ज़्यादा से ज़्यादा काम ठेका, कैजुअल और अप्रेण्टिस मज़दूरों से कराया जाता है। इन सभी कारख़ानों में मज़दूरों से निहायत दमनकारी परिस्थितियों में काम लिया जाता है और उनके क़ानूनी अधिकारों का भी वास्तव में कोई मतलब नहीं होता। प्रबन्धन बाउंसरों की मदद से खुली गुण्डागर्दी करता है और पुलिसिया तन्त्र भी वफ़ादार कुत्तों की तरह उनकी सेवा में सन्नद्ध रहता है। ज़्यादातर कारख़ानों में यूनियनें नहीं हैं या मालिकों के दलालों की कुछ यूनियनें हैं। यूनियन बनाने की हर कोशिश को प्रबन्धन सीधी बग़ावत मानता है और इस पूरी पट्टी में हर ऐसी कोशिश को प्रशासन की खुली मदद से बर्बरतापूर्वक कुचल देने का इतिहास एक दशक से भी अधिक पुराना रहा है। हीरो होण्डा, मारुति सुज़ुकी और ओरियण्ट क्राफ़्ट के चर्चित उग्र मज़दूर संघर्ष इन्हीं दमनकारी परिस्थितियों के परिणाम थे। इनके अतिरिक्त छोटी-मोटी दर्जनों हड़तालें और आन्दोलन सिर्फ़ पिछले दस वर्षों के दौरान ही इस इलाक़े के आटोमोबाइल सेक्टर और गारमेण्ट उद्योग के कई कारख़ानों में हो चुके हैं, जिनका पूँजीपतियों के अख़बारों में कहीं ज़िक्र भी नहीं होता है। श्रीराम पिस्टन फ़ैक्टरी की घटना भी राष्ट्रीय अख़बारों में सुर्ख़ियाँ बनना तो दूर, कोने-अँतरे में भी स्थान नहीं पा सकी।

श्रीराम पिस्टन में भी प्रबन्धन के उत्पीड़न से तंग आ चुके मज़दूरों ने जब यूनियन बनाने की कोशिश शुरू की तो प्रबन्धन ने तरह-तरह से धौंस-धमकी और भयादोहन का सिलसिला शुरू कर दिया। फ़र्ज़ी आरोप लगाकर 22 मज़दूरों को निलम्बित कर दिया। लेकिन मज़दूर झुके नहीं। पिछले एक महीने से निलम्बित मज़दूरों की बहाली और यूनियन पंजीकरण के लिए फ़ैक्टरी के कुल दो हज़ार मज़दूर आन्दोलन चला रहे थे। पिछले दिनों, महीने में दूसरी बार, सभी मज़दूरों ने काम बन्द कर दिया और 11 दिनों से जारी हड़ताल के दौरान प्लाण्ट में ही जमकर बैठ गये। फिर प्रबन्धन न्यायिक मजिस्ट्रेट से फ़ैक्टरी परिसर जबरन ख़ाली करने का आदेश लेकर आया और फिर आतंक फैलाकर सबक़ सिखाने की नीयत से भारी पुलिस बल और बाउंसरों ने मज़दूरों पर आधी रात के बाद एकदम से धावा बोल दिया। 79 साथियों के घायल होने के बावजूद निहत्थे मज़दूरों ने भरपूर प्रतिरोध किया। बर्बर

(पेज 12 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

शहीद सुखदेव के जन्मदिवस (15 मई) के अवसर पर उन्हें क्रान्तिकारी श्रद्धांजलि

एक बेहद ज़रूरी बिगुल पुस्तिका

फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?

प्रकाशकः राहुल फ़ाउण्डेशन
पृष्ठः 64, मूल्य 20 रुपये
अपनी प्रति डाक से मँगाने के लिए सम्पर्क करें:
जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
फोनः 0522-2786782, 8853093555
ईमेलः info@janchetnabooks.org, janchetna@rediffmail.com
वेबसाइटः **janchetnabooks.org**

आपस की बात

सी.सी.टीवी से मज़दूरों पर निगरानी

नरेला औद्योगिक क्षेत्र के डी-1546, 1547, 1548 में राकेश फुटवियर प्रा.लि. है। जिसे हिन्द प्लास्टिक के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ मज़दूरों से जानवरों-सा सलूक किया जाता है। इस कम्पनी में 500 से भी ज़्यादा लेबर काम करते हैं, जिसमें से मुश्किल से 10 का ही ई.एस.आई. कार्ड बना हुआ है। इस फ़ैक्ट्री में 12-12 घण्टे काम लिया जाता है तथा कोई छुट्टी भी नहीं मिलती है। 12 घण्टे का मात्र 6000 रुपए महीना मिलता है। फ़ैक्ट्री मालिक तो लेबर से मारपीट, गाली-गलौज भी करता है। मालिक बीजेपी से जुड़ा हुआ है। यह कम्पनी नरेला में पिछले 12 वर्षों से चल रही है, लेकिन किसी भी लेबर का पी.एफ़ नहीं कटता है और ना ही किसी त्यौहार की छुट्टी मिलती है। फ़ैक्ट्री में ईवा कम्पनी का चप्पल एवं जूता बनता है, जिसमें काफ़ी प्रदूषण होता है, जिससे मज़दूर टी.बी. एवं दमा के शिकार हो जाते हैं। 2007 में एक मज़दूर का हाथ कट गया था, उस मज़दूर का ई.एस.आई. लगवाकर छोड़ दिया गया और काम से भी निकाल दिया गया। फ़ैक्ट्री में इतनी कड़ाई है कि एक लेबर दूसरे से बात नहीं कर सकता है। फ़ैक्ट्री में तो मालिक ने सीसीटीवी भी लगा रखा है जिससे वह मज़दूरों पर हर समय नज़र रखता है। ऐसा लगता है कि हम एक कैदखाने में काम करते हैं, ज़रा नज़रें उठायीं तो गाली-गलौज सुनो!

– प्रेमकुमार
नरेला औद्योगिक क्षेत्र, दिल्ली

चीन की जूता फैक्ट्रियों में काम करने वाले हज़ारों मज़दूर हड़ताल पर

(पेज 7 से आगे)

पूँजीवादी जमातों के हितो की रक्षा करने वाले मज़दूर वर्ग के इन गद्दारों का असली चेहरा मेहनतकश चीनी जनता के सामने बेनकाब हो रहा है। इस तरह के मज़दूर संघर्ष आने वाले दौर में सच्चे क्रान्तिकारी मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारों के लिए जमीन तैयार करने का भी काम कर रहे है।

नवउदारवाद के दौर में पूँजीवादी लूट और फासीवादी दमन के बीच मज़दूर संघर्षों को संगठित करने के मामले में चीन के मज़दूरों की यह हड़ताल भारत सहित, पूरी दुनिया के मज़दूर संघर्षों के लिए हड़तालों को सही दिशा में नेतृत्व देने का एक अच्छा उदाहरण है। आज पूरे विश्व और खासकर भारत, चीन, पाकिस्तान जैसे तीसरी दुनिया के अन्य देशों के मज़दूर आंदोलनों में लम्बे समय से छाई हुई चुप्पी टूट रही है और मेहनतकश आवाम समय-समय पर अपने अधिकारों के लिए सड़कों पर उतर रही है। परन्तु किसी क्रांतिकारी हिरावल पार्टी की गैर मौजूदगी के कारण यह संघर्ष किसी दूरगामी लक्ष्य के लिए जमीन तैयार करने के मज़दूर वर्ग के उद्देश्य को पूरा नहीं करते। आज सबसे महत्वपूर्ण कार्य जो हमारे सामने है वह है मज़दूरों के बीच लगातार राजनीतिक कार्य करते हुए उनकी चेतना को अर्थवाद के आगे विकसित करते हुए समाजवाद के विचारों तक लाना।

– मनन

मज़दूर बिगुल की नयी वेबसाइट आप यहाँ देख सकते हैं:
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकायँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल 'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :

- डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 फोन : 0522-2786782
- जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे)
- ज़ाफ़रा बाज़ार, गोरखपुर-273001
- जनचेतना, दिल्ली – फ़ोन : 09910462009
- जनचेतना, लुधियाना – फोन : 09815587807

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"
– लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता। बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये। सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 0522-2335237
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोनः 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित)

श्रीराम पिस्टन, भिवाड़ी के मज़दूरों के आक्रोश का विस्फोट और बर्बर पुलिस दमन

पिछले 26 अप्रैल की सुबह साढ़े चार बजे हरियाणा के मानेसर और धारूहेड़ा औद्योगिक क्षेत्र से सटे भिवाड़ी (ज़िला अलवर) के पथरेड़ी-चौपानकी औद्योगिक क्षेत्र स्थित आटो पार्ट्स बनाने वाली कम्पनी श्रीराम पिस्टन एण्ड रिंग्स के हड़ताली मज़दूरों पर 2000 पुलिसकर्मियों, आर.ए.एफ़ और कोबरा फोर्स के जवानों ने योजनाबद्ध ढंग से धावा बोलकर बर्बर लाठीचार्ज किया, दस चक्र गोलियाँ चलायीं और तीस आँसू गैस के गोले फेंके। पुलिस के साथ ही प्रबन्धन के दो सौ बाउंसरों ने भी चाकुओं, रॉडों और लाठियों से मज़दूरों पर हमला बोल दिया। इस हमले में घायल 79 मज़दूर अस्पताल में भर्ती हैं, जिनमें से चार की स्थिति गम्भीर है। इस पूरी घटना के बाद 26 मज़दूरों को गिरफ़्तार करके उनके ऊपर हत्या के प्रयास का मुकदमा ठोंक दिया गया, व 6 अन्य धाराएँ भी लगायी गयी। जबकि प्रबन्धन और उसके बाउंसरों के विरुद्ध प्रशासन ने कोई भी क़ानूनी कार्रवाई नहीं की। लेकिन पुलिस-प्रशासन के बर्बर दमन के ख़िलाफ़ मज़दूर झुके नहीं बल्कि फ़ैक्टरी गेट पर ही खूँटा गाड़कर अपना संघर्ष जारी रखे हुए हैं। मज़दूरों की माँगें हैं कि उनकी यूनियन का पंजीकरण तुरन्त किया जाये; जेल में बन्द 26 मज़दूर को बिना शर्त रिहा किया जाये; सभी मज़दूरों से झूठे मुकदमे वापस लिये जाये; निकाले गये 22 मज़दूरों को वापस लिया जाये साथ ही कम्पनी प्रबन्धन और पुलिस द्वारा बर्बर दमन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाये।

श्रीराम पिस्टन्स के आन्दोलनरत मजदूरों पर लाठीचार्ज करती पुलिस।

श्रीराम पिस्टन में मज़दूरों के हालात और संघर्ष की शुरुआत

श्रीराम पिस्टन भिवाड़ी प्लाण्ट में उत्पादन मार्च 2011 से शुरू हुआ था। श्रीराम पिस्टन का एक और प्लाण्ट ग़ाज़ियाबाद में भी है। श्रीराम पिस्टन मारुति सुज़ुकी, टाटा मोटर्स, फोर्ड, महिन्द्रा एण्ड महिन्द्रा से लेकर टोएटा से आटो मोबाईल कम्पनियों के लिए पिस्टन, रिंग्स, पिन और इंजन वाल्व बनाती है। यानी श्रीराम पिस्टन आज वैश्विक असेम्बली लाइन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जिसके उत्पादन का असर सिर्फ़ एक देश ही नहीं बल्कि कई देशों में कार-उत्पादन को प्रभावित कर सकता हैं। 2010 के अनुसार श्रीराम पिस्टन का सालाना टर्नओवर 75000 लाख था। लेकिन अगर हम फ़ैक्टरी मज़दूरों के हालात का जायज़ा लें तो साफ़ हो जाता है कि कम्पनी के मुनाफ़े के पीछे मज़दूरों की कैसी गुलामों जैसी ज़िन्दगी है। श्रम अधिकारी की रिपोर्ट के अनुसार फ़ैक्टरी में 1856 मज़दूर कार्यरत हैं जिनमें 560 स्थायी मज़दूर है, जिनका वेतन लगभग 8200-9000 के बीच है बाक़ी लगभग 1300 मज़दूर तीन साल के ठेका पर रखा गया है जिसे कम्पनी प्रबन्धन के शब्दों में फिक्सड टर्म कॉन्ट्रेक्ट (एफटीसी) कहते हैं जो सीधे तौर पर मज़दूरों से चुपचाप सिर झुकाकर काम कराने का अनुबन्ध है। इन मज़दूरों को सिर्फ़ 6200-7000 रुपये तक मज़दूरी मिलती है। बाक़ी लगभग 200 मज़दूरों को एक ठेका कम्पनी द्वारा काम पर रखा गया है जो सिर्फ़ 5000 रुपये पाते है, इनके ईएसआई और पीएफ़ का भी कोई हिसाब नहीं है। मज़दूरों के अनुसार कम्पनी पिछले एक साल से लगातार वर्कलोड बढ़ाती जा रही है, वहीं वेतन बढ़ोतरी के नाम पर पिछले साल मज़दूरों के वेतन में सिर्फ़ 26 रुपये का बढ़ोतरी की गयी। जबकि कम्पनी के सुपरवाइज़रों तथा प्रबन्धन अधिकारी के वेतन में वृद्धि हज़ारों में थी। वहीं मज़दूरों ने यूनियन बनाकर कम्पनी की तानाशाही का जवाब देने की शुरुआत की। और नवम्बर 2013 में यूनियन पंजीकरण के लिए फ़ाइल लगायी। कम्पनी ने यूनियन तोड़ने के लिए यूनियन के सक्रिय सदस्य महेश, हरिकृष्णा समेत 20 मज़दूरों को नम्बर से लेकर फ़रवरी तक काम से बाहर कर दिया। लेकिन फिर भी मज़दूरों ने यूनियन पंजीकरण की प्रक्रिया जारी रखी। लेकिन प्रबन्धन ने 20 जनवरी को श्रम विभाग से साठगाँठ करके यूनियन की फ़ाइल रद्द कर दी। लेकिन मज़दूरों ने पुनः 31 जनवरी 2014 को श्रीराम पिस्टन एण्ड रिंग्स कामगार यूनियन के नाम से यूनियन पंजीकरण की फ़ाइल लगा दी। प्रबन्धन ने मज़दूरों के बुलन्द हौसल को तोड़ने के लिए बिना किसी पूर्व सूचना के कई यूनियन नेताओं के प्रवेश पर रोक लगा दी। प्रबन्धन की बढ़ती तानाशाही के ख़िलाफ़ मज़दूरों ने 9 फ़रवरी को आम सभा का निर्णय लिया। लेकिन एक दिन पहले ही प्रबन्धन के गुण्डों ने यूनियन के महासचिव को डराने-धमकाने और पीछे हट जाने की चेतावनी दी। लेकिन मज़दूरों की एकजुटता के दम पर यूनियन नेतृत्व भी डटे रहे।

मज़दूरों की एकजुटता को तोड़ने के लिए प्रबन्धन ने 1 मार्च को फिर एक चाल चली। और नयी यूनियन पर तीन मज़दूरों के झूठे आरोप-पत्र सिविल कोर्ट में दिखाकर लेबर कोर्ट में यूनियन के पंजीकरण पर रोक लगा दी। इस घटना ने साफ़ कर दिया कि अब मज़दूरों के पास आन्दोलन के सिवाय कोई रास्ता नहीं बचा है, इसलिए 8 मार्च को यूनियन की तरफ़ प्रबन्धन को मज़दूरों ने अपना माँगपत्र सौंपा, जिसमें वेतन बढ़ोतरी, बेहतर कार्यस्थितियों और निकाले गये कर्मचारियों को बहाल करने की माँगें थीं। प्रबन्धन के 23 मार्च तक मज़दूरों की किसी भी माँग पर कोई सुनवायी नहीं कि बल्कि मज़दूरों को ज़बरदस्ती वर्कलोड बढ़ने के लिए रविवार को ओवरटाइम की शर्त थोप दी। जिसे न करने पर कई मज़दूरों को प्रबन्धन ने कम्पनी गेट पर रोक दिया। इसके बाद 23 मार्च से 27 मार्च तक लगभग 1200 मज़दूरों ने प्लाण्ट में उत्पादन ठप रखा और हड़ताल पर बैठ गये। और 600 मज़दूर बाहर कम्पनी गेट पर बैठे रहे। अन्त में श्रीराम पिस्टन प्रबन्धन को झुकना पड़ा और उन्होंने 10 दिन का समय लेकर बर्खास्त मज़दूरों को बहाल करने की बात पर समझौता किया।

लेकिन प्रबन्धन ने श्रम विभाग के समक्ष अपना रुख अड़ियल रखा, और यूनियन से किसी भी समझौते से मुकर गयी। तब मज़दूरों ने निर्णायक लड़ाई के लिए कमर कस ली और 15 अप्रैल से ए और बी शिफ़्ट के 1200 मज़दूर फ़ैक्टरी में अपने प्लाण्ट शेप के आगे हड़ताल पर बैठ गया। बाक़ी सी शिफ़्ट के मज़दूर फ़ैक्टरी गेट पर हड़ताल में शामिल हो गये।

इसके बाद 23 अप्रैल को श्रमायुक्त अलवर ने त्रिपक्षीय वार्ता बुलायी, लेकिन यूनियन अध्यक्ष को भाग लेने पर रोक लगा दी। जिससे बैठक बेनतीजा रही और आगे 28 अप्रैल को दोबारा बैठक तय हुई। असल में श्रीराम पिस्टन प्रबन्धन भी यही चाहता था। वैसे भी 24 अप्रैल में अलवर में लोकसभा चुनाव के मौजूद पुलिस-फोर्स का इस्तेमाल सोते हुए मज़दूरों हमला करने में योजना में सरकार-पुलिस-प्रशासन पूरे श्रीराम पिस्टन के एंजेड के तौर पर काम कर रही था। और 26 मार्च को प्रबन्धन तिजारा न्यायिक मजिस्ट्रेट से फ़ैक्टरी परिसर बलात् ख़ाली करने का आदेश लेकर आया और फिर आतंक फैलाकर सबक़ सिखाने की नीयत से पुलिस और बाउंसरों ने मज़दूरों पर एकदम से धावा बोल दिया। 79 साथियों के घायल होने के बावजूद निहत्थे मज़दूरों ने भरपूर प्रतिरोध किया। मौक़े का फ़ायदा उठाकर बाउंसरों ने चार गाड़ियों में आग लगा दी और दोष मज़दूरों पर डाल दिया। बर्बर हमले के विरोध में उपजे इस आक्रोश के विस्फोट को उस समय रोकना भी सम्भव नहीं था।

26 अप्रैल के बाद मज़दूरों की आन्दोलनकारी गतिविधि

1 मई मज़दूर दिवस को श्रीराम पिस्टन के मज़दूरों ने पूरे पथरेड़ी औद्योगिक क्षेत्र में रैली निकाली। और 8 मई को अलवर शहर में रैली निकाली और एडीएम को ज्ञापन सौंपकर माँग की कि गिरफ़्तार मज़दूरों को जल्दी रिहा किया जाये; त्रिपक्षीय समझौता के लिए बैठक बुलायी जाये, साथ 26 अप्रैल के बर्बर दमन की न्यायिक जाँच करायी जाये।

9 मई श्रीराम पिस्टन एण्ड रिंग्स कामगार यूनियन (भिवाड़ी) ने गुड़गाँव, मानसेर, धारुहेड़ा से लेकर बावल, भिवाड़ी की यूनियनों और संगठनों की सयुंक्त जनसभा बुलायी, जिसमें कई यूनियनों और संगठनों ने श्रीराम पिस्टन के मज़दूरों के जायज़ हक़-अधिकारों के संघर्ष में कन्धे से कन्धा मिलाकर साथ देने का भरोसा दिया। श्रीराम पिस्टन यूनियन के महेश ने बताया कि कल हम राजस्थान श्रम-अधिकारी और

(पेज 10 पर जारी)

आन्दोलन को मिले समर्थन से बौखलाये मैनेजमेण्ट के गुण्डों द्वारा मज़दूर कार्यकर्ताओं पर जानलेवा हमला

भिवाड़ी के मज़दूरों के समर्थन में दिल्ली, लखनऊ और लुधियाना में विभिन्न संगठनों के प्रदर्शन

भिवाड़ी के मज़दूरों के आन्दोलन के समर्थन में तमाम जनवादी संगठन, मज़दूर संगठन और छात्र संगठन भी खडे हुए हैं। इस क्रम में पहले 26 अप्रैल को मज़दूरों पर हुए पुलिसिया दमन के खिलाफ़ व भिवाड़ी के मज़दूरों के समर्थन में छात्र और मज़दूर संगठनों के संयुक्त मोर्चे ने 3 मई को राजस्थान सरकार के बीकानेर हाउस के सामने प्रदर्शन किया व रेज़िडेण्ट कमिश्नर को ज्ञापन देकर ठोस कार्यवाही की माँग की। ज्ञापन स्वीकार करने पहुँचे राजस्थान के रीजनल कमिश्नर ने कार्रवाई के लिए 2 हफ़्ते का समय माँगा है। बिगुल मज़दूर दस्ता की वक्ता शिवानी ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि यह घटना गुड़गाँव की औद्योगिक पट्टी में चल रहे मज़दूरों के दमन और संघर्ष की ही कड़ी है। उन्होंने बताया कि 26 अप्रैल को पुलिस के साथ ही प्रबन्धन के दो सौ बाउंसरों ने भी चाकुओं, रॉडों और लाठियों से मज़दूरों पर हमला बोल दिया। इस हमले में घायल 79 मज़दूर अस्पताल में भर्ती हैं, जिनमें से चार की स्थिति गम्भीर है। इस पूरी घटना के बाद 26 मज़दूरों को गिरफ़्तार करके उनके ऊपर हत्या के प्रयास का मुकदमा ठोंक दिया गया, जबकि प्रबन्धन और उसके बाउंसरों के विरुद्ध प्रशासन ने कोई भी क़ानूनी कार्रवाई नहीं की। होण्डा, रिको, मारुति के बाद श्रीराम पिस्टन की घटना प्रशासन की मालिक सेवा का प्रदर्शन करती है।

इस घटना के बाद 5 मई को ग़ाज़ियाबाद के श्रीराम पिस्टन एण्ड रिंग्स कम्पनी प्लाण्ट के आगे भिवाड़ी के मज़दूरो के समर्थन की माँग करने वाले पर्चे को बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ता बाँट ही रहे थे कि अचानक उन पर कम्पनी के बाउंसरों ने रॉडों, लाठियों से हमला किया। इस घटना के विरोध में 10 मई को विभिन्न मज़दूर संगठनों और जनवादी अधिकार संगठनों के संयुक्त मोर्चे ने दिल्ली के उत्तर प्रदेश भवन पर विरोध प्रदर्शन किया व रेजिडेंट कमिश्नर को ज्ञापन सौंपकर ठोस कार्रवाई की माँग की। परन्तु दिल्ली पुलिस ने सभा को जबरन भंग करने की कोशिश की। पुलिस ने बार-बार धमकी दी कि प्रदर्शनकारियों को भी गिरफ़्तार कर लिया जायेगा व मज़दूर कार्यकर्ताओं व पत्रकार तथा यूनिवर्सिटी प्रोफ़ेसरों के साथ धक्का-मुक्की करने लगे। परन्तु सभी संगठन प्रदर्शन स्थल पर ही डटे रहे और अपनी सभा जारी रखी। 'बिगुल मज़दूर दस्ता' की शिवानी ने कहा कि प्रबन्धन और मालिकों द्वारा किया गया यह कायराना हमला एक तो मालिकों का भय दिखाता है तथा इससे पुलिस-प्रशासन की मंशा भी स्पष्ट होती है, क्योंकि यह घटनाक्रम यूपी पुलिस की मौजूदगी में ही हुआ था। उन्होंने कहा कि तमाम मज़दूर और जनवादी संगठनों को ऐसे हमलों का पुरज़ोर विरोध करना चाहिए।

'गुड़गाँव मज़दूर संघर्ष समिति' (जीएमएसएस) के अजय ने बताया कि वे लोग कारख़ाना गेट से करीब 500 मीटर की दूरी पर पर्चा वितरण कर ही रहे थे कि दो गाड़ियों में करीब 8 गुण्डे और बाउंसर आये और उन्होंने लोहे की रॉडों, डण्डों, बेल्ट आदि से मज़दूर कार्यकर्ताओं पर हमला कर दिया। इस हमले में लहूलुहान करने के बाद उन्हें ज़बरन गाड़ी में भरकर श्रीराम पिस्टन कारख़ाने के अन्दर ले गये। अन्दर ले जाकर उन्होंने ग़ाज़ियाबाद पुलिस को भी बुला लिया और फिर पुलिस की मौजूदगी में भी इन चारों मज़दूर कार्यकर्ताओं को बर्बरतापूर्वक रॉड, सरिया आदि से पीटते रहे। इसके कारण तपीश के पैर में फ़्रैक्चर, आनन्द के सिर में गहरी चोट व पैर में फ़्रैक्चर, व अखिल के पैर में भी गम्भीर चोटें आयी हैं। इसके बाद पुलिस उन्हें थाने ले गयी और वहाँ पर हमलावरों के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज करने की बजाय इन चारों मज़दूर कार्यकर्ताओं पर ही प्राथमिकी दर्ज करने का प्रयास किया। लेकिन इस समय तक कुछ अन्य राजनीतिक कार्यकर्ता भी थाने पहुँच चुके थे और कई मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, जनवादी अधिकार कार्यकर्ताओं, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों द्वारा दबाव के कारण उन पर प्राथमिकी दर्ज करने में श्रीराम पिस्टन के हाथों बिकी हुई पुलिस कामयाब नहीं हो सकी। ज्ञात हो कि इस पूरे दौर में दर्द से परेशान जीएमएसएस व बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं को पुलिस ने कोई चिकित्सकीय देखरेख मुहैया नहीं करायी। उन्होने आगे कहा कि ऐसी कायराना हरकतों से मज़दूर डरने वाले नहीं हैं और इसके जवाब में अपने आन्दोलन को और तेज़ करेंगे और सभी मज़दूर संगठनों, जनवादी अधिकार संगठनों, छात्र संगठनों और सभी जनपक्षधर बुद्धिजीवियों और नागरिकों से अपील करते हैं कि इस आन्दोलन में मज़दूरों का पुरज़ोर तरीक़े से साथ दें। श्रीराम पिस्टन्स कामगार यूनियन के प्रदीप कुमार भी इस प्रदर्शन में राजस्थान से शामिल होने आये। उन्होंने ग़ाज़ियाबाद में हुए हमले की निन्दा की और बताया कि आज श्रीराम पिस्टन कामगार यूनियन ने भी भिवाड़ी में एक रैली का आयोजन किया था, परन्तु पुलिस और कोबरा फ़ोर्स के 2000 से ऊपर सेना बल ने मज़दूरों को घेर लिया और कहा कि आज इलाक़े में धारा 144 लगा दी गयी है और वे हड़ताल स्थान पर ही बैठे रहे। साफ़ है कि राजस्थान पुलिस और सरकार पूरी तरह श्रीराम पिस्टन प्रबन्धन की चाकरी कर रहा है, इसलिए मज़दूरों के हर अधिकार उनसे छीने जा रहे हैं। मज़दूर पत्रिका के सन्तोष ने कहा कि यह चुनावी वायदों वाले "अच्छे दिनों" की ख़तरनाक दस्तक ही है कि मज़दूर कार्यकर्ताओ पर इस तरह के बर्बर हमले हो रहे हैं। वहीं मज़दूर एकता केन्द्र के सुनील, इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र के दीपक व पी.यू.डी.आर. के मंजीत ने भी इस घटना की भर्त्सना की। इस प्रदर्शन में बिगुल मज़दूर दस्ता, गुड़गाँव मज़दूर संघर्ष समिति, पी.यू.डी.आर., इंकलाबी मज़दूर केन्द्र, मज़दूर पत्रिका आदि संगठन शामिल थे। रेजिडेण्ट कमिश्नर को सौंपे गये ज्ञापन में कम्पनी के दोषी अफ़सरों और सिक्योरिटी अफ़सर को तत्काल गिरफ़्तार करने, सिहानी गेट थाना, ग़ाज़ियाबाद के एस.एच.ओ. और अन्य पुलिसकर्मियों के विरुद्ध कठोर कार्रवाई करने और ग़ाज़ियाबाद क्षेत्र के तमाम कारख़ानों में श्रम कानूनों के गम्भीर उल्लंघन की जाँच करने आदि जैसी माँगें शामिल थीं।

लखनऊ में विरोध प्रदर्शन

गाजियाबाद में श्रीराम पिस्टन कारखाने के मैनेजमेंट द्वारा पुलिस तथा भाड़े के गुंडों से सामाजिक कार्यकर्ताओं पर कराये गये जानलेवा हमले के विरोध में लखनऊ में विभिन्न जनसंगठनों ने प्रदर्शन किया तथा प्रमुख गृह सचिव को ज्ञापन सौंपा।

जागरूक नागरिक मंच, बिगुल मज़दूर दस्ता, स्त्री मुक्ति लीग, नई दिशा छात्र मंच सहित विभिन्न जनसंगठनों के कार्यकर्ता, छात्र तथा प्रबुद्ध नागरिक विधानसभा पर एकत्र हुए तथा प्रदेश सरकार और

(पेज 10 पर जारी)

आस्ट्रेलिया के मज़दूर संगठनों से एकजुटता का सन्देश

प्रिय साथियो, गुड़गाँव मज़दूर संघर्ष समिति और बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं पर श्रीराम पिस्टन एंड रिंग्स कम्पनी के गुण्डों द्वारा जानलेवा हमले की खबर हमें मिली है। हम दमन की इस कार्रवाई की कठोर शब्दों में भर्त्सना करते हैं जिसका मकसद मज़दूरों को आतंकित करना और मज़दूर आन्दोलन को कमज़ोर करना था।

दुर्भाग्यवश, ऐसी क्रूरता अपने वेतन और काम की स्थितियों में सुधार के लिए संगठित होने का प्रयास कर रहे मज़दूरों के खिलाफ़ दुनिया भर में बार-बार की जाती है। इतिहास हमें बताता है कि यदि मज़दूर संगठित नहीं होते तो हम कमज़ोर बने रहते हैं। यदि हम कमज़ोर हैं, तो पूँजीपति हमसे ज़्यादा समय तक, कम पगार पर और असुरक्षित कार्यस्थलों पर ज़्यादा कड़ी मेहनत करवायेंगे। हम अपने स्वास्थ्य और जीवन के ज़रिए इसकी कीमत चुकायेंगे, जबकि मुनाफ़ा पूँजीपतियों की जेब में जायेगा।

कहने की ज़रूरत नहीं है कि संगठित होकर ही हम अपने वेतन और स्थितियों में सुधार कर पायेंगे। आर्थिक संकट के इस दौर में, दुनिया भर में पूँजीपति मज़दूरों पर दबाव बना रहे हैं। इस तरह के हमलों का न केवल प्रतिरोध करना, बल्कि राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अपने संगठन को विस्तार देना और उन्हें मज़बूत बनाना भी महत्वपूर्ण काम है। हम जितना एकताबद्ध होंगे, उतने ही मज़बूत होंगे।

आस्ट्रेलिया एशिया वर्कर्स लिंक घायल कार्यकर्ताओं को अपनी शुभकामानाएँ भेजता है और उनके शीघ्र स्वास्थ्यलाभ की कामना करता है। हम एक महत्वपूर्ण, कीमती और मुश्किल कार्यभार अपने कन्धों पर उठाने के लिए आपके मज़दूर कार्यकर्ताओं के साथ भी एकजुटता प्रदर्शित करते हैं। हम मज़दूरों को संगठित करने के आपके प्रयासों में आप सबकी सफलता की कामना करते हैं।

एकता और एकजुटता के साथ
वर्कर्स चेंज द वर्ल्ड
आस्ट्रेलिया एशिया वर्कर्स लिंक, मेलबर्न

तुर्की में कोयला खदान में सैकड़ों मज़दूरों की मौत

मुनाफ़े की हवस में एक और क़त्लेआम

पिछले 13 मई से तुर्की के मेहनतकशों और युवा लोगों में शोक और गुस्से की लहर फैली हुई है। उन्होंने पूँजी के मुनाफ़ाखोर, हत्यारे दानव के हाथों अपने 300 से भी ज़्यादा बेटों को खो दिया है। अपने उबलते आँसुओं और सीने में उमड़ते क्रोध के तूफ़ान को लिये हुए वे तुर्की के शहरों और कस्बे में सड़कों पर उतर पड़े हैं, और दुख और गुस्से से काँपती उनकी आवाज़ें बार-बार दुहरा रही हैं – ये दुर्घटना नहीं, मुनाफ़े के लालच में की गयी हत्याएँ हैं! हम इस ख़ूनी व्यवस्था को अब और नहीं चलने देंगे।

यह कहानी सिर्फ़ तुर्की की नहीं है। पूँजी की रक्तपिपासु राक्षसी पूरी दुनिया में ऐसे हत्याकाण्ड रचती घूम रही है।

पश्चिमी तुर्की के सोमा में कोयले की एक बहुत बड़ी खदान में 13 मई को पहले एक विस्फोट हुआ और फिर आग लग गयी। उस वक़्त शिफ़्ट बदल रही थी और क़रीब 750 मज़दूर खदान के अन्दर थे। यह रिपोर्ट लिखे जाने तक 282 लाशें निकाली जा चुकी थीं और सैकड़ों मज़दूर भीतर फँसे हुए थे। ज़्यादातर के बचने की बहुत कम सम्भावना बतायी जा रही थी। निकाली गयी लाशों में से एक 15 साल के बच्चे की भी थी जो इस बात को साबित करने के लिए काफ़ी थी कि खदान में बच्चों से भी काम कराया जाता था। जिस वक़्त मज़दूरों के परिवार और आम लोग खदान में फँसे अपने प्रियजनों के बारे में जानने के लिए खदान और अस्पताल के बाहर बेसब्री से इन्तज़ार कर रहे थे, उस वक़्त सरकारी अधिकारी और मंत्री पूरे मामले पर लीपापोती करने और मरने वालों की संख्या कम दिखाने की कोशिशों में लगे हुए थे। इससे लोगों में गुस्सा और क्षोभ बढ़ता गया।

हत्यारी कम्पनी को बचाने पर आमादा सरकार ने सैकड़ों की संख्या में सेना और पुलिस के जवान खदान और उसके पास मज़दूरों के रिहायशी इलाक़े में तैनात कर दिये। लेकिन इन क़दमों से गुस्से की लहर पूरे देश में फैल गयी।

सोमा में हुआ यह हादसा तुर्की की पहली ऐसी घटना नहीं है। दुनिया में खदान दुर्घटनाओं में मौतों के मामले में तुर्की तीसरे स्थान पर है। 2013 में तुर्की में क़रीब 13,000 खदान मज़दूर किसी न किसी दुर्घटना का शिकार हुए और पिछले दस वर्षों में हुई खदान दुर्घटनाओं में 1308 मज़दूरों की मौत हो चुकी है। इससे पहले तुर्की की सबसे भयंकर खदान दुर्घटना 1992 में हुई थी जिसमें 263 मज़दूर मारे गये थे। लेकिन सोमा के हत्याकाण्ड ने उसे बहुत पीछे छोड़ दिया है।

तुर्की में खदान दुर्घटनाओं की बढ़ती संख्या का सीधा सम्बन्ध निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों से है। पिछले वर्षों के दौरान दूसरे उद्योगों में भी दुर्घटनाएँ बढ़ी हैं।

खदान से मज़दूरों की लाशें निकाले जाते समय एकत्र उनके परिजन और अन्य मज़दूर

सरकारी आँकड़ों के मुताबिक 2002 और 2011 के बीच तुर्की में कार्यस्थल पर होने वाली दुर्घटनाओं में 40 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। इसके कारणों को समझना मुश्किल नहीं है। सभी उद्योगों में बड़े पैमाने पर ठेकेदारी प्रथा लागू है, ज़्यादातर मज़दूर असंगठित और अप्रशिक्षित होते हैं और ठेका कम्पनियों को उनकी सुरक्षा की कोई परवाह नहीं होती। ज़्यादातर मज़दूरों का कोई लिखित रिकार्ड भी नहीं होता और किसी हादसे की सूरत में खदान मालिक कम्पनी पर कोई ज़िम्मेदारी ही नहीं आती है। निजीकरण के बाद से मुनाफ़े को बढ़ाने के लिए सभी कम्पनियाँ ख़र्च घटाने पर जोर दे रही हैं और सबसे पहले मज़दूरों के स्वास्थ्य और सुरक्षा सम्बन्धी ख़र्चों में कटौती की जाती है। मज़दूरों का कहना था कि सोमा की खदान में सुरक्षा के बहुत से बुनियादी इंतज़ाम भी नहीं थे। श्रम विभाग और अन्य सरकारी एजेंसियों द्वारा निरीक्षण नहीं के बराबर होता है। हालाँकि तुर्की के श्रम मंत्रालय ने दावा किया कि 2012 के बाद से पाँच बार खदान का निरीक्षण किया गया था और उसकी सभी व्यवस्थाओं को क़ानूनी तौर पर दुरुस्त पाया गया था। लेकिन अगर ऐसा था तो इतनी सीधी सी जानकारी भी कम्पनी या सरकार के पास क्यों नहीं थी कि हादसे के वक़्त खदान के भीतर कुल कितने मज़दूर थे? ऐसा कैसे हुआ कि जिन तकनीकी इंतज़ामों को पिछले मार्च में मंजूरी दी गयी थी वहाँ इतना बड़ा विस्फोट हो गया और आग की लपटें बेरोकटोक फैलती चली गयीं। ज़्यादातर मज़दूरों की मौत आग या कार्बन डाई आक्साइड गैस के कारण दम घुटने से हुई। विशेषज्ञों के अनुसार अगर खदान से गैस बाहर निकालने वाले पंखे और 'पेंट' पर्याप्त संख्या में होते और ठीक होते तो भी बहुत से मज़दूरों की जान बच सकती थी। अन्दर आक्सीजन मारक भी कम थे, हालाँकि बाद में कम्पनी ने लोगों को भ्रमित करने के लिए निकाली गयी लाशों के चेहरे पर मास्क लगवा दिये थे।

यह ख़ूनी खदान सामो होल्डिंग्स नामक कम्पनी की है जिसने 2005 में इसे ख़रीदा था। खदान से होने वाले बेहिसाब मुनाफ़े को इसने अपने बिल्डिंग व्यवसाय में लगाया है। तुर्की की सबसे ऊँची इमारत 'स्पाइन टावर' भी इसी कम्पनी की है। सत्तारूढ़ पार्टी से इसके काफ़ी नज़दीकी रिश्ते हैं। कम्पनी के डायरेक्टर जनरल की पत्नी मेलिके डोगरू सत्तारूढ़ ए.के. पी. पार्टी की सांसद भी चुनी गयी है। पिछले स्थानीय निकायों के चुनावों में कम्पनी ने पार्टी की मदद के लिए ग़रीबों के बीच कोयले की मुफ़्त बोरियाँ भी बँटवायी थीं।

कम्पनी के इस एहसान का बदला चुकाने में सरकार कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रही। हादसे के 24 घण्टे बाद हुई प्रेस कांफ्रेंस में प्रधानमंत्री रेसेप तय्यिप एर्दोगान ने कहा कि ''ऐसी दुर्घटनाएँ तो आम बात हैं।'' मुनाफ़ाखोरों के इस वफ़ादार नौकर से मज़दूरों के लिए ऐसी हिकारत की ही उम्मीद की जा सकती है। 2010 में एक और खदान हादसे में 30 मज़दूरों की मौत के बाद एर्दोगान ने कहा था कि ऐसी मौतें तो ''इस पेशे की क़िस्मत में बदी है।'' इस घटना से एक सप्ताह पहले ही तुर्की के श्रम और सामाजिक सुरक्षा मंत्रालयों ने पेशागत स्वास्थ्य और सुरक्षा पर एक अन्तरराष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया था। इसमें श्रम मंत्री फारूख सेलिक ने तुर्की में पेशागत स्वास्थ्य और सुरक्षा उपायों में सुधार की लम्बी चौड़ी डींगें हाँकी थीं और उल्टे ट्रेड यूनियनों पर तोहमत मढ़ी थी कि वे स्थिति में सुधार नहीं होने दे रही हैं। लेकिन इसके ठीक पहले मई दिवस के दिन अधिकारियों ने तमाम सड़कों को बन्द करके मई दिवस की रैलियों और सभाओं को नाकाम करने में पूरी ताकत झोंक दी थी, जिनमें मज़दूरों का स्वास्थ्य और सुरक्षा एक बड़े मुद्दे के तौर पर उठाया जा रहा था। सोमा के ख़ूनी हादसे के बाद भी सरकारी तंत्र और कारपोरेट मालिकाने वाला मीडिया मरने वालों की संख्या कम बताने और लीपापोती करने में लगा रहा जबकि दूसरी ओर सड़कों पर विरोध करने वालों पर पुलिसिया हमले तेज कर दिये गये। 14 मई को तुर्की के अनेक शहरों में ज़ोरदार विरोध प्रदर्शन करने वाले मज़दूरों और नौजवानों पर दंगा-विरोधी पुलिस ने लाठियों, आँसू गैस के गोलों और पानी की बौछारों से हमला किया। लेकिन वे उन्हें डरा-धमकाकर शान्त कराने में नाक़ाम रहे हैं। तुर्की की कई बड़ी मज़दूर यूनियनों के साथ ही इंजीनियर एवं आर्किटेक्ट की यूनियन, डाक्टरों की एसोसिएशन और छात्र-युवा संगठनों ने मिलकर 15 मई को देशव्यापी हड़ताल आयोजित की। जिस वक़्त सोमा में मज़दूरों को दफ़नाया जाना शुरू हुआ, उसी समय हज़ारों मज़दूर, छात्र-युवा और विभिन्न क्षेत्रों के सामाजिक कार्यकर्ताओं ने राजधानी अंकारा के तकसीम चौक तथा सोमा होल्डिंग के हेडक्वार्टर के सामने विशाल प्रदर्शन करके स्वास्थ्य व सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधानों को कड़ाई से लागू करने और ठेका प्रथा को ख़त्म करने की माँग उठायी। उन्होंने यह भी संकल्प लिया कि वे इस व्यवस्था के ख़िलाफ़ लड़ाई तेज करेंगे जिसमें इंसानों की ज़िन्दगी से बढ़कर कम्पनियों का मुनाफ़ा होता है और मज़दूरों की सुरक्षा पर ख़र्च एक ग़ैरज़रूरी बोझ माना जाता है।

पूरी दुनिया में आज भी उद्योगों को चलाने के लिए सबसे अधिक फ़ॉसिल ईंधन यानी तेल, गैस और कोयला की खपत होती है। कोयला खदानों में मज़दूर बेहद असुरक्षित हालत में काम करते हैं। भूमण्डलीकरण की नीतियों के दौर में पूरी दुनिया में सुरक्षा के रहे-सहे इन्तज़ामों को भी ताक पर धरकर ठेका और कैजुअल मज़दूरों से अन्धाधुन्ध खनन कराया जा रहा है जिसके कारण दुनिया भर में खदान दुर्घटनाओं की संख्या में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई है। भारत में चासनाला की कुख्यात कोयला खदान दुर्घटना को कौन भूल सकता है जिसमें 450 से अधिक मज़दूर मारे गये थे। उस वक़्त एक के बाद एक कई भयानक हादसों के बाद देशव्यापी विरोध के दबाव में सरकार ने निजी कोयला खदानों का राजकीयकरण कर दिया था। लेकिन अब एक बार फिर एक-एक करके खदानों को निजी हाथों में सौंपा जा रहा है। भारी पैमाने पर अवैध ढंग से कोयला निकालने का काम सरकार की नाक के नीचे होता है जिसमें मज़दूर बिना किसी सुरक्षा के जान पर खेलकर काम करते हैं। कुछ ही साल पहले रानीगंज में अवैध खदानों में पानी भरने से दर्जनों मज़दूर मारे गये थे जिनकी ठीक-ठीक संख्या का कभी पता ही नहीं चल पाया। चीन में हर साल खदान दुर्घटनाओं में क़रीब 5000 मज़दूर मारे जाने हैं।

पूँजीवाद के बढ़ते संकट के साथ ही मुनाफ़ाखोरों के बीच गलाकाटू होड़ तेज़ हो गयी है और मुनाफ़े की घटती दर को बचाने के लिए मज़दूरों के हर तरह के अधिकारों और हितों में कटौती की जा रही है। अगर मज़दूर एकजुट होकर अपने हक़ों की हिफ़ाज़त के लिए नहीं लड़ेंगे तो पूँजी के ये ख़ूनी उपासक इसी तरह हमारी बलि चढ़ाते रहेंगे।

– संजय

चुन्दुर दलित हत्याकाण्ड के आरोपियों के बेदाग बरी होने से हरे हुए ज़ख़्म और कुछ चुभते-जलते बुनियादी सवाल

एक बार फिर पुरानी कहानी दुहरायी गयी। चुन्दुर दलित हत्याकाण्ड के सभी आरोपी उच्च न्यायालय से सुबूतों के अभाव में बेदाग बरी हो गये। भारतीय न्याय व्यवस्था उत्पीड़ितों के साथ जो अन्याय करती आयी है, उनमें एक और मामला जुड़ गया। जहाँ पूरी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था शोषित-उत्पीड़ित मेहनतकशों, भूमिहीनों, दलितों (पूरे देश में दलित आबादी का बहुलांश शहरी-देहाती मज़दूर या ग़रीब किसान है) और स्त्रियों को बेरहमी से कुचल रही हो, वहाँ न्यायपालिका से समाज के दबंग, शक्तिशाली लोगों के ख़िलाफ़ इंसाफ़ की उम्मीद पालना व्यर्थ है। दबे-कुचले लोगों को इंसाफ़ कचहरियों से नहीं मिलता, बल्कि लड़कर लेना होता है। उत्पीड़न के आतंक के सहारे समाज में अपनी हैसियत बनाये रखने वाले लोगों के दिलों में जब तक संगठित जनशक्ति का आतंक नहीं पैदा किया जाता, तब तक किसी भी प्रकार की सामाजिक बर्बरता पर लगाम नहीं लगाया जा सकता।

चाहे बथानी टोला हो, लक्ष्मणपुर बाथे हो, मियाँपुर हो, मिर्चपुर हो, करमचेदु हो या चुन्दुर हो, सभी जगह जिन दलितों की हत्याएँ हुईं और उत्पीड़न हुआ, वे ग़रीब मेहनतकश थे और इन अत्याचारों को अंजाम देने वाले सवर्ण या मध्य जातियों (हिन्दू जाति व्यवस्था में शूद्र माने जाने वाले) के पूँजीवादी भूस्वामी और कुलक थे। गाँवों में यही पूँजीवादी व्यवस्था के प्रमुख अवलम्ब हैं, सभी पूँजीवादी पार्टियों में इस वर्ग की शक्तिशाली 'दबाव-लाबियाँ' काम करती हैं और देश की अधिकांश क्षेत्रीय पार्टियों का मुख्य सामाजिक आधार प्राय: पिछड़ी-मध्य जातियों के इन्हीं ख़ुशहाल मध्यम और धनी मालिक किसानों में है। ग्रामीण दलित आबादी (जो ज़्यादातर ग्रामीण सर्वहारा और अर्द्धसर्वहारा हैं) के सुव्यवस्थित उत्पीड़न की निरन्तरता के पीछे जो वर्गीय अन्तर्वस्तु मौजूद है, उसे समझना बहुत ज़रूरी है। यह पुराने सामन्ती उत्पीड़न से भिन्न परिघटना है। यह एक नयी पूँजीवादी परिघटना है। आज के जिन सवर्ण पूँजीवादी भूस्वामियों के पूर्वज सामन्ती भूस्वामी थे, केवल वही गाँव के ग़रीब दलितों पर अत्याचार नहीं करते। उनसे अधिक बड़े पैमाने पर (शूद्र मानी जाने वाली) मध्य जातियों के वे धनी और ख़ुशहाल मालिक किसान आज दलित ग़रीबों का उत्पीड़न करते हैं जो सामन्ती भूमि सम्बन्धों के ज़माने में काश्तकार और रैयत के रूप में ख़ुद ही सामन्ती उत्पीड़न के शिकार थे। (ज़्यादातर) सवर्ण सामन्तों के आर्थिक शोषण के साथ ही जातिगत आधार पर उत्पीड़न के विरुद्ध भी वे आवाज़ उठाते रहते थे। प्राय:, कई इलाक़ों में, सवर्ण वर्चस्व के विरुद्ध दलित जातियों के साथ इन शूद्र जातियों/किसान जातियों/मध्य जातियों की एकता भी बनती थी। लेकिन काश्तकारों के मालिक किसान बनने और भूमि सम्बन्धों के बदलने के साथ ही जातियों की सामाजिक स्थिति में बदलाव आये। मध्य जातियों के उच्च मध्यम और धनी किसान अब अपने खेतों में उन्हीं दलित मज़दूरों की श्रमशक्ति ख़रीद कर बाज़ार के लिए उत्पादन करने लगे थे, जो पहले सामन्तों की ज़मीन पर बेगारी करते थे या बेहद छोटे काश्तकार हुआ करते थे। मध्य जातियों के मालिक किसानों की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन के साथ सामाजिक स्थिति में भी परिवर्तन हुआ। जाति व्यवस्था के पदसोपानक्रम में अपने को सवर्णों के समकक्ष दर्शाने के लिए तरह-तरह के नये सामाजिक आचार और 'एसर्शन' की प्रक्रिया शुरू हुई, जिसे समाजशास्त्री 'संस्कृताइजेशन' का नाम देते हैं। आर्थिक धरातल पर जो नया अन्तरविरोध जन्मा था, उसी के अनुरूप सामाजिक धरातल पर भी मध्य जातियों के साथ दलित जातियों के अन्तरविरोध तीखे हो गये। अपनी आर्थिक ताक़त के हिसाब से मध्य जातियों के कुलक गाँवों में पूँजीवादी राजनीति के मुख्य आधार बन गये। राष्ट्रीय स्तर की बुर्जुआ पार्टियों में उनके दबाव समूह अस्तित्व में आये और क्षेत्रीय पार्टियों पर उनका दबदबा कायम हुआ। बिहार और उत्तर-प्रदेश के कुर्मी, कोइरी, यादव, सैंथवार, लोध और जाट, आन्ध्र के रेड्डी और कम्मा, कर्नाटक के लिंगायत और वोक्कालिंगा, हरियाणा के जाट, यादव, गुर्जर, पंजाब के जाट, तमिलनाडु के थेवर और वान्नियार, गुजरात के पटेल, महाराष्ट्र के मराठा आदि ऐसी मध्य जातियाँ हैं, जिनसे कुलकों-पूँजीवादी फ़ार्मरों का नया वर्ग मुख्यत: संघटित हुआ। इन जातियों के जो ग़रीब और निम्न मध्यम किसान हैं, वे भी वर्गीय चेतना के अभाव और आर्थिक प्रश्नों पर वर्ग संघर्ष की अनुपस्थिति के चलते जातिगत ध्रुवीकरण के शिकार हो जाते हैं और ग़रीब दलितों के विरुद्ध सजातीय धनी मालिक किसानों के साथ खड़े हो जाते हैं। बुर्जुआ संसदीय राजनीति इस ध्रुवीकरण का भरपूर लाभ उठाती है, और फिर अपनी पारी में इस स्थिति को मजबूत बनाने का भी काम करती है।

ज़ाहिर है कि दलित उत्पीड़न की इस वर्गीय अन्तर्वस्तु को समझकर ही, इसके विरुद्ध संघर्ष की सही रणनीति तय की जा सकती है और वर्गीय लामबन्दी की राह की जातिगत ध्रुवीकरण-जनित बाधाओं को तोड़ा जा सकता है, अन्यथा मंचों पर चढ़कर मनु और ब्राह्मणवाद के विरुद्ध आग उगलकर फिर अपने अध्ययन कक्षों में घुस जाने का काम तो बुद्धिजीवी अगियाबैताल बातबहादुर करते ही रहते हैं। आज दलित प्रश्न पर जितने सेमिनार, शोध-अध्ययन आदि होते हैं, उतना शायद किसी और प्रश्न पर नहीं, पर ठोस व्यावहारिक कार्यकारी नतीजों तक पहुँचने का कोई ईमानदार प्रयास नहीं दीखता। बुनियादी सवाल यह है कि ग़ैर-दलित जातियों के ग़रीब तबकों के जातिगत पूर्वाग्रहों-संस्कारों और मिथ्याचेतना को तोड़कर उन्हें दलित मेहनतकश आबादी के साथ कैसे खड़ा किया जाये। जाति आधार पर संगठित होकर दलित उत्पीड़न का कारगर प्रतिकार नहीं कर सकता। दलित उत्पीड़न के प्रश्न को समाज के सभी उत्पीड़ितों का प्रश्न कैसे बनाया जाये, यही यक्ष प्रश्न है।

आन्ध्र प्रदेश में सत्ता में जब जिस मध्य जाति के कुलकों और क्षेत्रीय पूँजीपतियों की दख़ल ज़्यादा रही, तब उस जाति के लोगों ने दलितों का अधिक उत्पीड़न किया, क्योंकि उन्हें परोक्ष सरकारी संरक्षण का पूरा भरोसा रहता था। 1991 में चुन्दुर (गुण्टुर ज़िला) में रेड्डियों ने आठ दलितों की हत्या तब की थी, जब राज्य में जनार्दन रेड्डी की सरकार थी। जब एन.टी. रामाराव सत्ता में थे तो उनके दामाद के गाँव करमचेदु में कम्मा धनी किसानों ने छ: दलितों की बेरहमी से हत्या कर दी थी। सत्यनारायण जब प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष थे तो बोत्सा वासुदेव नायडू के नेतृत्व में तूर्पु कापुओं के तलवारों और कुल्हाड़ों से लैस गिरोह ने श्रीकाकुलम ज़िले के लक्ष्मीपेट गाँव में कई दलितों की हत्या की थी और कई को निर्मम यन्त्रणा का शिकार बनाया था।

जातिगत उत्पीड़न के राजनीतिक समर्थन का प्रतिकार करने के लिए दलित ग़रीब प्राय: इस या उस दलित बुर्जुआ पार्टी या नेता की ओर देखते हैं, जो पिछले 60-65 वर्षों के दौरान हमेशा ही पूँजी के टुकड़खोर चाकर और ठग साबित होते रहे हैं। इसलिए बुनियादी सवाल यह हैं कि दलित मेहनतकशों की भारी आबादी दलित राजनेताओं और दलित कुलीन मध्यवर्ग की भितरघाती मदारी जमातों के मोहपाश से मुक्त होकर उस पूँजीवादी व्यवस्था को ध्वस्त करने वाली क्रान्तिकारी राजनीति के परचम को कब और कैसे उठायेगी, जो जातिगत उत्पीड़न का आधार है!

– **कविता कृष्णपल्लवी**

भगाणा काण्ड, मीडिया, मध्यवर्ग, सत्ता की राजनीति और न्याय-संघर्ष की चुनौतियाँ

भगाणा की दलित बच्चियों के साथ बर्बर सामूहिक बलात्कार की घटना पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और ज़्यादातर अख़बारों की बेशर्म चुप्पी ज़रा भी आश्चर्यजनक नहीं है।

ये अख़बार पूँजीपतियों के हैं। यूँ तो पूँजी की कोई जाति नहीं होती, लेकिन भारतीय पूँजीवाद का जाति व्यवस्था और साम्प्रदायिकता से गहरा रिश्ता है। भारतीय पूँजीवादी तन्त्र ने जाति की मध्ययुगीन बर्बरता को अपने हितों के अनुरूप बनाकर अपना लिया है। भारत के पूँजीवादी समाज में जाति संरचना और वर्गीय संरचना आज भी एक-दूसरे को अंशत: अतिच्छादि0त करते हैं। गाँवों और शहरों के दलितों की 85 प्रतिशत आबादी सर्वहारा और अर्द्धसर्वहारा है। मध्य जातियों का बड़ा हिस्सा कुलक और फ़ार्मर हैं। शहरी मध्यवर्ग का मुखर तबका (नौकरशाह, प्राध्यापक, पत्रकार, वकील, डॉक्टर आदि) ज़्यादातर सवर्ण है। गाँवों में सवर्ण भूस्वामियों की पकड़ आज भी मज़बूत है, फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि ये सामन्ती भूस्वामी की जगह पूँजीवादी भूस्वामी बन गये हैं। अपने इन सामाजिक अवलम्बों के विरुद्ध पूँजीपति वर्ग क़तई नहीं जा सकता। वैसे भी पूँजीवादी वोट बैंक के खेल के लिए जातिगत बँटवारे को बनाये रखना ज़रूरी है। सामाजिक ताने-बाने में जनवादी मूल्यों के अभाव के कारण, जो ग़रीब सवर्ण और मध्य जातियों की आबादी है, वह भी जातिवादी मिथ्या चेतना की शिकार है।

इस पूरी पृष्ठभूमि में भगाणा काण्ड पर मीडिया की बेशर्म चुप्पी को आसानी से समझा जा सकता है। सवाल केवल मीडिया के मालिकों का ही नहीं है, ज़्यादातर मीडियाकर्मी ग़ैर दलित जातियों के हैं और उनके जातिवादी पूर्वाग्रहों की भी इस बेशर्म 'टोटल ब्लैकआउट' के पीछे एक अहम भूमिका है।

जो दलित बुद्धिजीवी हैं, वे ज़्यादातर सुविधाभोगी बात-बहादुर हैं। ये बहुसंख्यक ग़रीब दलित आबादी की पीड़ा को भुनाकर अगियाबैताल दलित लेखक-बुद्धिजीवी होने के तमगे तो ख़ूब बटोरते हैं, लेकिन शेरपुर, लक्ष्मणपुर बाथे, बथानी टोला से लेकर मिर्चपुर और भगाणा तक - पिछले चार दशकों के दौरान किसी भी घटना पर आन्दोलनों में सड़क पर उतरने की इन्होंने जोख़िम या ज़हमत नहीं उठायी। ये कायर सुविधाभोगी हैं, जो तमाम गरमागरम बातों के बावजूद, व्यवस्था के पक्ष में ही खड़े हैं।

कम्युनिस्ट आन्दोलन का पुराना इतिहास दलित-उत्पीड़न के विरुद्ध मज़बूती से खड़ा होने का इतिहास रहा है। लेकिन संसदीय जड़वामनवाद और अर्थवादी भिखमंगई एवं सौदेबाज़ी की राजनीति में गले तक धँसने के बाद, सभी चुनावी वामपन्थी पार्टियाँ भी दलितों के उत्पीड़न के विरुद्ध जुझारू आन्दोलन और जाति-व्यवस्था विरोधी साहसिक सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन संगठित कर पाने का जज़्बा और कूवत खो चुकी हैं। हालत यह है कि इन पार्टियों के अधिकांश नेता, कार्यकर्ता और इनसे जुड़े लेखक, बुद्धिजीवी अपनी निजी ज़िन्दगी में जाति-धर्म के रीति-रिवाज़ों का पालन करते हैं। फिर दलित ग़रीबों की बहुसंख्यक आबादी भला क्यों इन्हें अपना माने और किस भरोसे के सहारे इनके साथ खड़ी हो? नक्सलबाड़ी किसान उभार से उपजे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन का मुख्य आधार गाँवों में दलितों और आदिवासियों की भूमिहीन आबादी के ही बीच था और पहली बार दलितों ने उनके नेतृत्व में संगठित होकर अपने उत्पीड़न का मुँहतोड़ जवाब दिया था। आज भी, उन इलाक़ों में, जहाँ इस आन्दोलन का आधार था, दलित ज़्यादा शान से सिर उठाकर चलते हैं। लेकिन विचारधारात्मक कमज़ोरी और भारतीय क्रान्ति के कार्यक्रम की ग़लत समझ के कारण यह कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन फूट-दर-फूट का शिकार होकर बिखर गया। कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन आज नयी ज़मीन पर अपने पुनर्निर्माण की कोशिश कर रहा है। ऐसे में, उसका एक बुनियादी कार्यभार है कि वह जाति व्यवस्था के समूल नाश के दूरगामी संघर्ष और जातिगत उत्पीड़न के विरुद्ध जुझारू प्रतिरोध के फ़ौरी संघर्ष को लगातार चलाये। जाति-व्यवस्था विरोधी संघर्ष भारत में समाजवाद के लिए संघर्ष का एक अनिवार्य बुनियादी घटक है। ग़ैर दलित ग़रीब मेहनतकशों में जो जातिवादी मिथ्याचेतना है, उसके विरुद्ध सांस्कृतिक- वैचारिक-शैक्षिक धरातल पर लगातार काम करना होगा। सबसे पहले तो यह ज़रूरी है कि सच्चे कम्युनिस्ट इस मायने में स्वयं नज़ीर पेश करें और यह साबित करें कि वे निजी ज़िन्दगी में जाति-धर्म की रूढ़ियों को रत्तीभर भी नहीं मानते। दूसरे, दलित मेहनतकशों को भी, लगातार उनके बीच काम करके, यह विश्वास दिलाना होगा कि इस या उस दलितवादी पार्टी या नेता का वोट बैंक बने रहकर वे ख़ुद को ही ठगते हैं और पूँजीवादी व्यवस्था (जो जाति व्यवस्था की पोषक है) की उम्र बढ़ाने का काम करते हैं। साथ ही, जो सुविधाभोगी दलितवादी सिर्फ़ गरमागरम बात बहादुरी करते हैं, वे भी उन्हें ठगते हैं।

व्यापक मेहनतकश चेतना की वर्गचेतना को कुशाग्र बनाने के लिए, जातिगत संस्कारों-पूर्वाग्रहों के विरुद्ध सतत संघर्ष ज़रूरी है, यह सच है। दूसरी ओर यह भी सच है कि जातिगत पूर्वाग्रहों-संस्कारों को कमज़ोर करने और तोड़ने के लिए शिक्षा, प्रचार और वर्ग हितों को लेकर आन्दोलन संगठित करने के माध्यम से जनता की वर्ग चेतना को ज़्यादा से ज़्यादा जागृत और मुखर किया जाये। ये दोनों प्रक्रियाएँ द्वन्द्वात्मकत: जुड़ी हैं और साथ-साथ चलानी होंगी।

सबसे ज़रूरी यह है कि मेहनतकशों के विभिन्न संगठनों में दलित भागीदारी बढ़ायी जाये, ग़ैर दलित मेहनतकशों की जातिवादी मिथ्याचेतना के विरुद्ध सतत संघर्ष किया जाये और उनके बीच का अलगाव और भेदभाव तोड़ा जाये। वर्ग संगठनों के अतिरिक्त कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को 'जाति-उन्मूलन मंच' जैसे संगठन अवश्य बनाने चाहिए। साथ ही, उन्हें जातिगत उत्पीड़न विरोधी मोर्चा भी गठित करना चाहिए। दलित मेहनतकशों की पूरी भागीदारी के बिना समाजवाद के लिए संघर्ष को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता और समाजवाद के लिए लड़े बिना दलित अपने उत्पीड़न का कारगर प्रतिकार नहीं कर सकते। जाति व्यवस्था को अन्तिम रूप से दफ़नाने का काम समाजवाद के कार्यक्रम पर अमल द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

चीन की जूता फैक्ट्रियों में काम करने वाले हज़ारों मज़दूर हड़ताल पर

मज़दूरों के सामने नंगा हो चुका है नामधारी चीनी कम्युनिस्टों का असली चेहरा

चीन के प्रमुख औद्योगिक नगरों में से एक डोंगगुआन में यू युएन नामक जूता बनाने वाली कंपनी के मज़दूरों द्वारा अपने जायज अधिकारों को हासिल करने के लिए की गई हड़ताल चीन में हाल ही के कुछ वर्षों में हुई सबसे बड़ी हड़ताल है। पहले के कुछ दिनों में तो इसमें सिर्फ यू युएन के ही मज़दूर शामिल थे, परंतु मज़दूरों की अपनी पहलकदमी और मज़दूर कार्यकर्ताओं के प्रयासों के कारण बाद में कंपनी की धोखाधड़ी और तानाशाहीपूर्ण रवैये के खिलाफ संघर्ष कर रहे मज़दूरों को आस-पास के क्षेत्रों में काम करने वाले मज़दूरों का समर्थन भी मिलना शुरु हो गया, जिसके चलते इस हड़ताल ने एक व्यापक रुप धारण कर लिया। चीन के सामाजिक सुरक्षा बीमा कानून के अनुसार मज़दूर अपनी मासिक मज़दूरी में से हर महीने 10 से 20: हिस्सा सामाजिक बीमा खाते में जमा करवाते हैं, जिसमें कंपनी को भी अपने मुनाफे का एक हिस्सा जमा करवाना आवश्यक होता है। इसमें जमा गई रकम मज़दूर अपनी सेवानिवृत्ति के समय निकाल सकते हैं। यू युएन हर महीने आवास और सेवा-निवृत्ति लाभ के नाम पर 10 से 20 प्रतिशत पैसे मज़दूरों के वेतन में से काटती तो रही, लेकिन उसने काटी गई रकम का एक छोटा सा हिस्सा ही मज़दूरों के खातो में जमा करवाया जबकि बाकी का हिस्सा कम्पनी ने इस धोखाधड़ी के माध्यम से हड़प लिया। ज्यादातर मज़दूरों के मामलो में कम्पनी ने काटी गई रकम का कोई भी हिस्सा सामाजिक बीमा खाते में जमा ही नही किया। चीन की ज़्यादातर फैक्ट्रियों की तरह यू युएन में भी मज़दूरों से लगातार ओवरटाइम करवाया जाता है, इसलिए उनके खातों में जमा की जाने वाली राशि में ओवरटाइम का पैसा भी शामिल किया जाना चाहिए।

लेकिन ज्यादातर मामलों में कंपनियाँ हर महीने जो रकम मज़दूरों के सामाजिक बीमा खाते में जमा करवाती है उसकी गणना वह उनके वास्तविक मज़दूरी पर न कर मूल मज़दूरी पर करती है, जिसके कारण उनके खाते में ओवरटाईम में की गई मज़दूरी का हिस्सा शामिल ही नहीं किया जाता है। कंपनी द्वारा कई सालों से लगातार जारी इस धोखाधड़ी का पता तब चल पाया जब कुछ मज़दूर अपने खाते में जमा की गई रकम का पता करने के लिए बीमा कार्यालय गये। पहले तो मज़दूरों ने मैनेजमेण्ट से बातचीत द्वारा इस मसले को सुलझाने कि कोशिश की, लेकिन मैनेजमेण्ट द्वार उनकी माँगों को लेकर कोई ठोस कदम न उठाने के चलते 14 अप्रैल 2014 को मज़दूर कंपनी की जालसाज़ी के खिलाफ हड़ताल पर चले गये।

ताइवान स्थित यू युएन विश्व की सबसे बड़ी जूता बनाने वाली कंपनी है जो नाइके, एडिडास, रीबक्कक, और कई अन्य प्रमुख ब्रांडों के लिए जूता बनाती है। कंपनी की वेबसाइट में दी गई जानकारी के अनुसार पिछले साल 2013 में उसने 30 करोड़ जूतों का उत्पादन किया था, जिसके चलते उसका शुद्ध मुनाफा बढ़कर +434.8 करोड़ तक पहुँच गया था। परंतु यह पूरा मुनाफा उसने मज़दूरों द्वारा अपना हाड़-मांस गला कर कमाए हुए पैसे को हड़प कर कमाया था।

सन 1976 के पूँजीवादी तख्तापलट के बाद से चीन की नकली लाल-झण्डे वाली कम्युनिस्ट पार्टी की लगातार जारी पूँजीवादी नीतियों के खिलाफ बहुसंख्य मेहनतकश आबादी का गुस्सा लगातार बढ़ता जा रहा है और वह रह-रह कर अपने अधिकारों के लिए सड़कों पर उतर रही है। चाइना लेबर बुलेटीन के अनुसार इस साल अप्रैल महीने तक चीन में मज़दूरों के 202 जुझारु हड़तालें हुई जो संख्या के हिसाब से पिछले साल की तुलना में 31: अधिक है। मज़दूरों के लगातार हो रहे इन प्रदर्शनों से घबराई हुई चीनी सरकार ने नामधारी कम्युनिस्ट चीन में पैदा हुए इस प्रकार के नवधनाण्य पूँजीपतियों और सम्राज्यवादियों के हितो की रक्षा के लिए भारी संख्या में पुलिस और अन्य सैनिक बलो को मज़दूरों के दमन के लिए तैनात किया हुआ था। मज़दूरों को ड़रा-धमका कर काम पर वापस भेजने के लिए पुलिस ने मज़दूरों के साथ मारपीट की और कई मज़दूर कार्यकर्ताओं को जेल भेज दिया, जिसमें से अनेक अब भी कैद हैं। पर मज़दूर इन सबसे घबराए बगैर न सिर्फ कारखाने के बाहर डटे रहे बल्कि अपने संघर्ष को एक व्यापक मज़दूर आबादी तक पहुँचाने के लिए जिन जगहों पर मज़दूर इकठा होते हैं - जैसे, पार्कों, खाने-पीने की दुकानों आदि में पर्चे बाँटते हुए और अपने संघर्ष के बारे में उन्हें बताते हुए लगातार उनसे संपर्क बनाते रहे। इसके अलावा फेसबुक और ट्विटर के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय मज़दूर संगठनों को भी यू युएन के मज़दूरों द्वारा लड़े जा रहे इस जुझारु संघर्ष में अपना समर्थन देने का आह्वान किया। व्यापक प्रचार, सम्पर्क और वैश्विक सहयोग के इन प्रयासों का ही नतीजा था कि जहाँ शुरुआत में इस हड़ताल में 10,000 मज़दूर शामिल थे वहीं बाद में यह संख्या 65,000 हजार तक पहुँच गई।

इस पूरे आंदोलन के दौरान सबसे ख़ास बात यह रही कि यू युएन के मज़दूरों ने अपने इस संघर्ष को एक कारखाने तक सीमित न रख व्याप्क मज़दूर आबादी तक पहुँचाया। इसी कारण न सिर्फ कंपनी को मज़दूरों की माँगें मानने के लिए बाध्य होना पड़ा बल्कि सरकार चाहकर भी मज़दूरों का दमन नहीं कर पायी। अपने पिछले अनुभवों से सीख लेते हुए मज़दूरों का कहना है कि यदि कंपनी द्वारा उनकी माँगो को लेकर कोई ठोस कदम नहीं उठाती तो वे दोबारा संघर्ष की राह अख़्तियार करेंगे।

चीन में रह-रह कर हो रहे इन संघर्षों से एक बात बिल्कुल साफ है कि कम्युनिस्टों का मुखौटा लगाकर मज़दूरों के खुले शोषण और उत्पीड़न के दम पर पैदा हो चुके नवधनाड्ड

(पेज 2 पर जारी)

सैन्य तानाशाही और खुले पूँजीवादी शोषण के विरुद्ध एक बार फिर सड़कों पर आ रहे हैं मिस्र के मज़दूर

आज एक बार फिर पूँजीवादी साम्राज्यवादी शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध मिस्र के मज़दूरों का असन्तोष एक के बाद एक जुझारू हड़तालों के रूप में उभरकर सामने आ रहा है। कपड़ा, लोहा तथा स्टील कम्पनियों में काम करने वाले मज़दूर, डॉक्टर, फ़ार्मासिस्ट, डाकख़ाना-कर्मी, सामाजिक कर्मी, सामाजिक यातायात-कर्मी, तिपहिया ड्राइवर, और अब संवाददाता जैसे दसियों हज़ार मज़दूर काम की परिस्थितियों को बेहतर करने, वेतन बढ़ाने और अन्य मज़दूर अधिकारों से जुड़ी माँगों को लेकर लगातार सड़कों पर आ रहे हैं। जनवरी 2014 से मज़दूर हड़तालों के उभार का यह सिलसिला पूरे मिस्र में दिख रहा है जो अब्दुल अल फ़तह-सिसी के नेतृत्व में साम्राज्यवाद द्वारा पोषित सैन्य तानाशाही के तहत होने वाले नंगे पूँजीवादी शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध जनता की आवाज़ को अभिव्यक्त कर रहा है।

फ़रवरी 2014 में सरकारी कपड़ा फ़ैक्टरी महाल्ला इल-कुबरा में 20,000 से अधिक मज़दूरों ने हड़ताल की, ये मज़दूर मैनेजर को हटाने और मज़दूरी को वर्तमान 520 मिस्र पाउण्ड मासिक से बढ़ाकर 1200 मिस्र पाउण्ड करने की माँग कर रहे थे, जो कि सरकारी विभाग की न्यूनतम मज़दूरी है। महाल्ला फ़ैक्टरी के मज़दूरों की हड़ताल के समर्थन में इससे जुड़ी अन्य 16 फ़ैक्टरियों के मज़दूरों ने भी हड़ताल कर दी थी। इनमें काफ़िर अल-दव्वार स्पिनिंग और वीविंग कम्पनी, टाण्टा डेल्टा टेक्सटाइल कम्पनी, जाकाजिक स्पिनिंग और वीविंग कम्पनी, और मिस्र हेल्वान टेक्सटाइल कम्पनियों के हज़ारों मज़दूर शामिल थे। इन सभी कम्पनियों के मज़दूरों की भी वही माँगें थीं, जो महाल्ला फ़ैक्टरी के मज़दूरों उठा रहे थे।

यहाँ लगातार हो रही हड़तालों पर नज़र डालें तो फ़रवरी 2014 में यातायात-कर्मियों की हड़ताल हुई, जिसमें ग्रेटर काहिरा अथोरिटी की सभी 28 गैराजों की बसें ठप कर दी गयीं, जिनमें 42,000 मज़दूर काम करते हैं। 9 मार्च 2014 से सरकारी अस्पतालों में काम करने वाले डॉक्टर तथा अन्य चिकित्साकर्मी चिकित्सा पर सरकारी ख़र्च बढ़ाने और कर्मियों का वेतन बढ़ाने की माँगों को लेकर आंशिक रूप से अनिश्चितकालीन हड़ताल पर हैं। मैन्यूफ़ैक्चरिंग और लोहा तथा स्टील उत्पादन करने वाली इल-अशर, सिकन्दरिया और स्वेज़ में मज़दूरों ने हड़ताल की। इसके साथ ही फ़ार्मासिस्ट और समाजसेवा कर्मचारियों ने सिकन्दरिया, काफ़र, इल-शेख़ और काहिरा में हड़ताल की।

मिस्र की सैन्य-तानाशाही खुली पूँजीवादी लूट के समर्थन में इन मज़दूर हड़तालों को कुचलने के लिए सेना और पुलिस का इस्तेमाल करती है। यह मज़दूर संघर्ष मूलतः कॉरपोरेट घराने की सम्पत्ति और जनता के बीच अन्तरविरोधों के साथ ही राज्यसत्ता द्वारा कक्ररपोरेट घरानों के इसारे पर की जा रही हिंसा, बेरोज़गारी, लगातार बढ़ रहा किराया, सरकारी मशीनरी में भ्रष्टाचार, प्राख्रतिक बर्बादी, जीवन की परिस्थितियों में हो रही लगातार बदहाली, सैन्य तानाशाही द्वारा हत्या और जेलों में डाल दिये गये हज़ारों बेकसूर लोगों तथा प्रदर्शन विरोधी क़ानून जैसी परिस्थितियों के विरुद्ध मिस्र के मज़दूर वर्ग में व्याप्त गुस्से की अभिव्यक्ति है। सत्ता द्वारा किये जा रहे खुले दमन के कारण ये हड़तालें सीधे सैन्य तानाशाही के विरुद्ध राजनीतिक संघर्ष का रूप ले रही हैं।

मिस्र में मज़दूर संघर्षों पर नज़र डालें तो 2004 से 2008 के बीच 17 लाख मज़दूरों ने हड़तालों में हिस्सा लिया था, और 2010 से पहले नील डेल्टा के कपड़ा मज़दूरों की हड़तालों से ही वह ज़मीन तैयार हुई थी, जिस पर खड़े होकर मुस्लिम ब्रदरहुड ने मध्य-वर्ग को साथ लेकर मुबारक सरकार को सत्ता से बेदख़ल होने के लिए मजबूर कर दिया था। उस समय मिस्र में कोई क्रान्तिकारी मज़दूर संगठन नहीं था, जो इन मज़दूर संघर्षों का सही राजनीतिक दिशा में नेतृत्व कर सकता और पूँजीवादी सत्ता को ध्वस्त कर सही मायने में मेहनतकश जनता की सत्ता को स्थापित करता। मध्यवर्ग को साथ लेकर मुबारक को बेदख़ल करने के बाद सत्ता में आयी मोहम्मद मुर्सी की सरकार ने पूँजीवादी व्यवस्था को जैसे का तैसा रखते हुए अपना काम शुरू किया था, और इसका परिणाम यह हुआ कि मुबारक को सरकार से बेदख़ल करने के बाद भी मज़दूरों के हालात में कोई बदलाव नहीं हुआ और आज फिर से सैन्य-तख्तापलट के बाद सिसी की सैन्य तानाशाही के रूप में मुबारक सत्ता की ही वापसी हो चुकी है, जिसके तहत साम्राज्यवादी और देशी पूँजीपति आकाओं के मुनाफ़े के लिए मज़दूरों का खुला शोषण और आन्दोलनों का सशस्त्र दमन किया जा रहा है।

सिसी की सरकार भी लगातार हर प्रकार से पूँजीपतियों-साम्राज्यवादियों के हितों के लिए अपने काम रही है, और इसके कई उदाहरण हैं जब सिसी सरकार ने मज़दूरों की हड़ताल को समाप्त करने के लिए बर्बर सैन्य दमन का सहारा लिया। पिछले कुछ दिनों में सिसी सरकार के रवैये से यह बिल्कुल स्पष्ट हो चुका है कि सेना को मुख्यतः फ़ैक्टरी मज़दूरों की हड़तालों का दमन करने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। इसका एक उदाहरण है अगस्त में सुईज स्टील कम्पनी में मज़दूरों के धरने का सैन्य पुलिस द्वारा बर्बर दमन। एक और घटना में एक उच्च सैन्य अधिकारी ने अन्तरराष्ट्रीय सिरेमिक और पोर्सीलीन का उत्पादन करने वाली क्लोप्तरा सिरेमिक्स कम्पनी में मज़दूर यूनियन के नेताओं की हत्या कर दी।

यहाँ की गुप्त पुलिस इन यूनियन के नेताओं से उनके त्यागपत्रों पर हस्ताक्षर लेने का दबाव बनाने में पूँजीपतियों के दलाल के रूप में काम कर रही है, और यदि कोई यूनियन नेता हस्ताक्षर करने से मना करते हैं तो उन्हें आतंकवादी कहकर उनका उत्पीड़न किया जाता है और उनकी छानबीन की जाती रहती है।

मिस्र में मज़दूरों के संघर्षों का इतिहास देखें तो 1957 में बनी मिस्र फ़ेडरेशन ऑफ़ ट्रेड यूनियन्स शुरू से हड़तालों को तोड़ने के लिए सत्ता के हाथों में एक हथियार की तरह काम करती रही है। इसके साथ ही यहाँ कई ऐसी राजनीतिक पार्टियाँ हैं, जो ख़ुद को मज़दूरों का प्रतिनिधि कहती हैं, लेकिन वास्तव में पूँजीवादी सत्ता के समर्थन में 'मज़दूरों को शान्त रखने' का एक उपकरण हैं जो पूँजीवादी साम्राज्यवादी सत्ता के लिए एक सुरक्षा-पंक्ति की तरह काम करती हैं।

जिन सपनों के लिए 2011 में मिस्र की मेहनतकश जनता और मध्यवर्ग एक बेहतर भविष्य के लिए साम्राज्यवादी पोषित होसनी मुबारक की तानाशाही को उखाड़ फेंकने को तिहाड़ चौक पर एकजुट हुआ था, वह सपना आज पुनः सैन्य तानाशाही लागू हो जाने के बाद सपना ही बना हुआ है। आज भी मिस्र की जनता बेरोज़गारी और ग़रीबी से जूझ रही है, और काहिरा में रहने वाले सबसे ग़रीब लोगों की हालत यह है कि यहाँ पाँच लोगों का परिवार 10 मिस्र पाउण्ड (80 रुपया यानी 16 रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन) प्रतिदिन पर जीने के लिए मजबूर है। पहले भी बेरोज़गारों की संख्या काफ़ी अधिक थी, लेकिन पिछले तीन साल में भी बेरोज़गारी में तेज़ी से इज़ाफ़ा हुआ है, और 2013 के अन्तिम तिमाही में बेरोज़गारों की संख्या 13 लाख से बढ़कर 36.5 लाख हो चुकी है। यहाँ कुल बेरोज़गार लोगों में से 69 प्रतिशत 15 से 29 साल की उम्र के नौजवान हैं। आज भी मिस्र के हर चार में से एक व्यक्ति सरकार द्वारा निर्धारित 540 डॉलर सालाना की ग़रीबी रेखा के नीचे जी रहा है।

मिस्र में जनता के बीच व्याप्त असन्तोष का अनुमान इन हड़तालों से लगाया जा सकता है, लेकिन क्रान्तिकारी परिस्थितियाँ मौजूद होने के बावजूद किसी क्रान्तिकारी हिरावल नेतृत्व के अभाव में जनता का संघर्ष आगे नहीं जा सका है। मेहनतकश जनता के शौर्यपूर्ण संघर्ष और कुर्बानियों का परिणाम और वर्तमान में मिस्र में मेहनतकश जनता की वास्तविक स्थिति ने एक क्रान्तिकारी हिरावल पार्टी की आवश्यकता को एक बार फिर रेखांकित किया है। 2011 में मज़दूर हड़तालों और संघर्षों ने तहरीर चौक से मुबारक की शोषक पूँजीवादी-साम्राज्यवादी सत्ता के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलन्द की थी, जो किसी क्रान्तिकारी नेतृत्व के अभाव में मुस्लिम-ब्रदरहुड के पाले में जाकर मुर्सी के सत्ता में आने के साथ समाप्त हो गया था। आज मिस्र की मेहनतकश जनता की प्रगतिशील ताक़तों का असन्तोष एक बार फिर पूँजीवादी-साम्राज्यवादी शोषण और सिसी सैन्य तानाशाही के विरुद्ध सड़कों पर प्रकट हो रहा है और आने वाले समय में जनता की संगठित ताक़त अवश्य ही पूँजीवादी-साम्राज्यवादी शोषण-उत्पीड़न के विरुद्ध क्रान्तिकारी ताक़तों के नेतृत्व में एक निर्णायक संघर्ष का रूप लेगी।

– राजकुमार

चुप्पी तोड़ो, आगे आओ! मई दिवस की अलख जगाओ!!

मई दिवस का इतिहास पूँजी की गुलामी की बेड़ियों को तोड़ देने के लिए उठ खड़े हुए मज़दूरों के ख़ून से लिखा गया है। जब तक पूँजी की गुलामी बनी रहेगी, संघर्ष और क़ुर्बानी की उस महान विरासत को दिलों में सँजोये हुए मेहनतकश लड़ते रहेंगे। हमारी लड़ाई में कुछ हारें और कुछ समय के उलटाव-ठहराव तो आये हैं लेकिन इससे पूँजीवादी गुलामी से आज़ादी का हमारा जज़्बा और जोश क़त्तई टूट नहीं सकता। करोड़ों मेहनतकश हाथों में तने हथौड़े एक बार फिर उठेंगे और पूँजी की ख़ूनी सत्ता को चकनाचूर कर देंगे।

इसी संकल्प को लेकर दिल्ली, लुधियाना और गोरखपुर में मज़दूरों के मई दिवस के आयोजनों में बिगुल मज़दूर दस्ता के साथियों ने शिरकत की और इन आयोजनों को क्रान्तिकारी धार और जुझारू तेवर देने में अपनी भूमिका निभायी।

सभी जगह हुए कार्यक्रमों में बिगुल के साथियों ने कहा कि 1886 के मई महीने में 'काम के घण्टे आठ' की माँग को लेकर अमेरिका के शिकागो शहर के मज़दूरों ने जो ज़बरदस्त संघर्ष किया और जो महान क़ुर्बानियाँ दीं, उन्होंने पूरी दुनिया के मज़दूरों को जगा दिया। सरकार ने इस हड़ताल को कुचलने के लिए पूरी ताक़त झोंक दी जिसमें कई मज़दूर शहीद हुए। झूठे आरोपों में मुक़दमा चलाकर मई आन्दोलन के चार नेताओं – पार्सन्स, स्पाइस, फिशर और एंजेल को फाँसी दे दी गयी। लेकिन उस आन्दोलन से भड़की ज्वाला जंगल की आग की तरह अमेरिका से यूरोप और फिर पूरी दुनिया में फैलती चली गयी। 1887 में मज़दूर वर्ग की पार्टियों के पेरिस सम्मेलन में मज़दूर वर्ग के महान शिक्षक और कार्ल मार्क्स के सहयोगी फ्रेडरिक एंगेल्स के प्रस्ताव पर 1 मई को हर वर्ष 'अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस' मनाने का फैसला किया गया। तबसे मई दिवस दुनिया भर के मज़दूरों का त्योहार बन गया। मई दिवस हमें इस बात की याद दिलाता है कि मज़दूर वर्ग को सिर्फ़ आर्थिक माँगों की लड़ाई में नहीं उलझे रहना चाहिए, बल्कि उससे आगे बढ़कर अपनी राजनीतिक माँगों की लड़ाई लड़नी चाहिए, एक इंसान की तरह जीने का हक़ माँगना चाहिए। राजनीतिक माँगों की यह लड़ाई पूँजीवादी लोकतंत्र की सारी जालसाज़ियों को नंगा करती है, पूँजीवाद की जड़ों पर चोट करती है और पूँजीवाद को क़ब्र में दफ़नाकर राजकाज और समाज के ढाँचे के समाजवादी पुनर्निर्माण की दिशा में मज़दूर संघर्षों को आगे बढ़ाती है।

उन्होंने मज़दूरों के बीच इस बात को रखा कि बीसवीं सदी में मज़दूर वर्ग ने अनगिनत बहादुराना संघर्षों की बदौलत बहुत सारे क़ानूनी हक़ हासिल किये। यही नहीं, सोवियत संघ, चीन और कई देशों में पूँजीवाद को उखाड़कर मज़दूरों का अपना राज भी क़ायम हुआ। लेकिन पहले राउण्ड की ये जीतें स्थायी नहीं हो सकीं। पूरी दुनिया की पूँजी अपनी एकजुट ताक़त और मज़दूर वर्ग के ग़द्दारों की मदद से मज़दूर वर्ग को एक बार फिर पीछे धकेलने में और मज़दूर राज्यों को तोड़ने में कामयाब हो गयी। तबसे पूरी दुनिया में नवउदारवाद की जो उलटी लहर चल रही है, उसने अनगिनत क़ुर्बानियों से हासिल मज़दूरों के सारे अधिकारों को फिर से छीन लिया है। पूँजी की चक्की मज़दूरों की हड्डियों तक का चूरा बना रही है और शोषण की जोंकें उनकी नस-नस से लहू चूस रही हैं। इस बात को हिन्दुस्तान के हर औद्योगिक क्षेत्र के मज़दूर अपने अनुभव से अच्छी तरह जानते हैं। मज़दूर वर्ग की नकली पार्टियाँ और भ्रष्ट दलाल यूनियनें इस काम में पूँजीवाद की मदद ही कर रही हैं।

लेकिन पूँजीवाद की यह जीत स्थायी नहीं है। पूँजीवाद अजर-अमर नहीं है। इक्कीसवीं सदी में पूँजी और श्रम के बीच फैसलाकुन जंग होगी जिसमें श्रम के पक्ष की जीत पक्की है। भविष्य मज़दूर वर्ग का है। इस बात के संकेत मिलने लगने हैं। सन्नाटा टूटने लगा है। पूरी दुनिया के कोने-कोने से मज़दूर विद्रोहों की ख़बरें आ रही हैं और भारत का मज़दूर भी जागने लगा है। हमें एक लम्बी, कठिन और फैसलाकुन लड़ाई के लिये ख़ुद को तैयार करना होगा।

बिगुल की ओर से इस बात को पुरज़ोर ढंग से रखा गया कि मज़दूरों की पहली ज़िम्मेदारी यह बनती है कि वह छोटी-छोटी आर्थिक लड़ाइयों में उलझे रहने और संसदीय चुनावों से बदलाव के भ्रमजाल से अपने को मुक्त करें। मज़दूरों को पूँजीवाद को जड़मूल से उखाड़ फेंकने के अपने ऐतिहासिक मिशन को पूरा करने के लिए नये सिरे से लामबन्द होना होगा। मज़दूर वर्ग को स्वयं अपने पिछड़े विचारों की दिमाग़ी गुलामी से भी छुटकारा पाना होगा। हमें पढ़ना, जानना और सीखना होगा – ट्रेड यूनियन संघर्षों और क्रान्तिकारी संघर्षों के बारे में, पूँजीवादी शोषण के नये-नये हथकंडों के बारे में और दुनियाभर में मज़दूर संघर्षों से मिली शिक्षाओं के बारे में। हमें अपनी ट्रेड यूनियनों को क्रान्तिकारी धार देनी होगी और साथ ही उन बिखरे हुए, असंगठित मज़दूरों की ताक़त को लामबन्द करना होगा जो अभी यूनियन के बुनियादी अधिकार से भी वंचित हैं। हुकूमत पर भारी जन दबाव बनाने के लिए और भावी मज़दूर सत्ता का बीज अंकुरित करने के लिए मज़दूरों को अपनी मज़दूर पंचायतें संगठित करनी होंगी। स्त्री मज़दूरों की इन यूनियनों और पंचायतों में भागीदारी बढ़ानी होगी और उनके अलग से संगठन भी बनाने होंगे। याद रखिये, आधी आबादी को घरेलू गुलामी में क़ैद रखकर, मज़दूर वर्ग स्वयं अपनी गुलामी से कभी आज़ाद नहीं हो सकता।

मज़दूर वर्ग को मज़दूर क्रान्ति का अपना अगुआ दस्ता तैयार करना होगा। इसके लिए उसे क्रान्तिकारी मज़दूर अख़बार और अध्ययन-मण्डलों के ज़रिये मज़दूर क्रान्ति के विज्ञान, इतिहास और भावी रास्ते के नक्शे को जानना समझना होगा। मज़दूरों के बहादुर युवा सपूतों को भगतसिंह के सपनों का मज़दूर राज्य बनाने के लिए भगतसिंह के बताये हुए रास्ते पर चलना होगा और बस्ती-बस्ती में क्रान्तिकारी नौजवान संगठन बनाने होंगे।

आज घोषणा करने का दिन, हम भी हैं इंसान
हमें चाहिए बेहतर दुनिया, करते हैं ऐलान

गोरखपुर के बरगदवा औद्योगिक क्षेत्र में मई दिवस का आयोजन

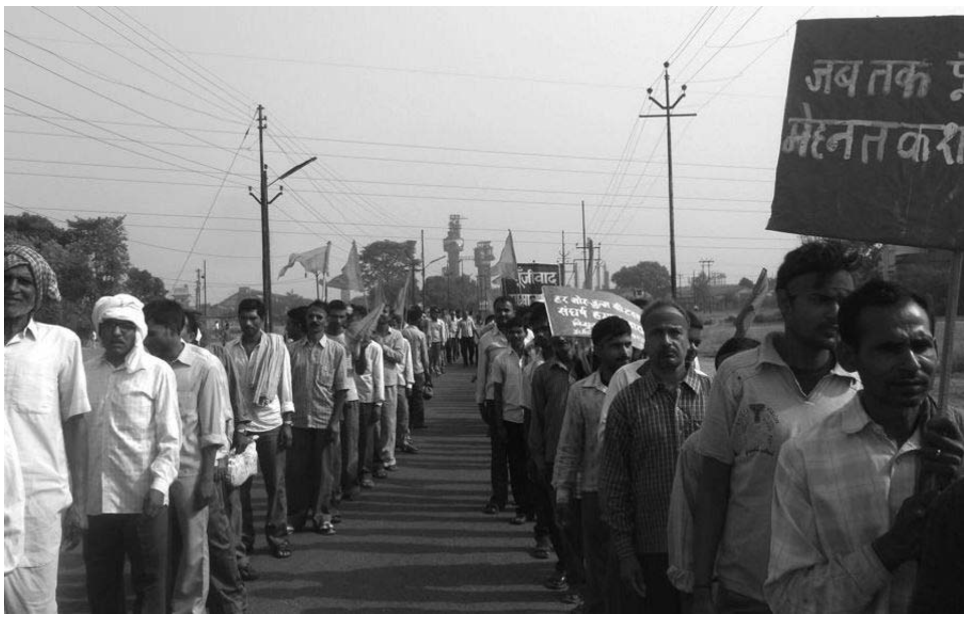

गोरखपुर के बरगदवा औद्योगिक क्षेत्र में 2009 और 2011 में मज़दूरों ने मालिकान, सरकारी तंत्र और नेताशाही की एकजुट शक्ति का डटकर मुकाबला करते हुए ज़बर्दस्त संघर्ष किया था और कई बुनियादी माँगों पर मालिकान को झुकाने में और पुलिस तथा गुण्डों के हमलों को पीछे धकेलने में कामयाब हुए थे। काम के घण्टे आठ कराने, जॉब कार्ड, न्यूनतम वेतन, साप्ताहिक अवकाश जैसी कई उपलब्धियाँ मज़दूरों ने लड़कर जीती थीं। लेकिन उसके बाद से मालिकान फिर से मज़दूरों के मिले हुए अधिकार छीनने और उन्हें पहले की तरह दबा-कुचलकर रखने की हर कोशिश करते रहे हैं। मज़दूरों के नेतृत्व के कुछ प्रमुख व्यक्तियों को झूठे मुकदमों में फँसाकर शहरनिकाले का आदेश पारित कराने से लेकर कई कारख़ानों के अगुआ मज़दूरों को नौकरी से निकालने तक के हथकण्डे उन्होंने अपनाये हैं। कुछ कारख़ानों में तो लगभग आधे मज़दूरों को बदल दिया गया है।

लेकिन इसके बावजूद मज़दूर हर वर्ष बरगदवा में मई दिवस का आयोजन करके संघर्ष जारी रखने का संकल्प लेते रहे हैं। इस वर्ष कई कारख़ानों के मज़दूरों ने बिगुल मज़दूर दस्ता के साथ मिलकर बरगदवा में मई दिवस पर पूरे दिन का कार्यक्रम आयोजित किया जिसमें मालिकों और श्रम विभाग की हरचन्द कोशिशों के बावजूद भारी संख्या में मज़दूर शामिल हुए।

पहली मई को सुबह 7 बजे से मज़दूरों का विशाल जुलूस निकला जो पूरे औद्योगिक क्षेत्र और मज़दूर बस्तियों तथा मुख्य सड़कों से होते हुए करीब ढाई घण्टे बाद सभा स्थल पर पहुँचा। सभा में बिगुल मज़दूर दस्ता के सत्यम, प्रसेन, अंगद और लालचन्द्र, स्त्री मज़दूर संगठन की मीनाक्षी, टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन गोरखपुर के चन्द्रभूषण राय व अजय मिश्र, इंजीनियरिंग वर्कर्स यूनियन (लक्ष्मी साइकिल वर्क्स) के रामाशीष, वी.एन. डायर्स के फौजदार तथा ने मई दिवस के शहीदों को याद करते हुए कहा कि हमें अपने रोज़-रोज़ के संघर्षों के साथ ही पूरी पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ लम्बी लड़ाई की भी तैयारी करनी होगी। तभी शोषण और अन्याय से मज़दूरों की मुक्ति का मई दिवस के शहीदों का सपना पूरा होगा।

जनसभा में इलाहाबाद से आयी शहीद भगतसिंह विचार मंच की टोली ने पूँजीवादी राजनीति पर चोट करने वाला नाटक 'देश को आगे बढ़ाओ' तथा क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किये। शाम को 6 बजे से मज़दूरों के एक रिहायशी इलाके, विकासनगर में दो फिल्में – 'मौत और मायूसी के कारखाने' तथा 'मॉडर्न टाइम्स' का प्रदर्शन किया गया।

छीने गये अधिकारों को फिर से लड़कर लेना होगा हर ज़ोर-ज़ुल्म का ज़ोरदार जवाब हमको देना होगा !

लुधियाना में मज़दूर दिवस सम्मेलन का आयोजन मज़दूरों ने दी शिकागो के शहीदों को श्रद्धांजलि

अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस के अवसर पर लुधियाना के पुडा मैदान में टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, कारखाना मज़दूर यूनियन, नौजवान भारत सभा तथा अखिल भारतीय नेपाली एकता मंच की ओर से संयुक्त रूप से विशाल 'मज़दूर दिवस सम्मेलन' किया गया। "मई दिवस के शहीद अमर रहें", "दुनिया के मज़दूरो एक हो", "इंकलाब ज़िन्दाबाद'' आदि गगनभेदी नारे बुलन्द करते हुए हज़ारों मज़दूर सम्मेलन में शामिल हुए। जनसंगठनों ने प्रतिनिधियों ने क्रान्तिकारी लाल झण्डा लहराकर शिकागो के शहीदों को सलामी दी।

टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन के अध्यक्ष राजविन्दर ने कहा कि आज मज़दूरों की संगठित ताकत न होने के चलते आठ घण्टे दिहाड़ी के अधिकार सहित बहुतेरे क़ानूनी अधिकार लागू नहीं हो रहे। मज़दूरों को अपनी क्रान्तिकारी विरासत से सीखना होगा और संगठित ताक़त के दम पर अपने अधिकार हासिल करने के लिए आगे आना होगा। नौजवान भारत सभा के संयोजक छिन्दरपाल ने कहा कि यह झूठ कि पूँजीवादी व्यवस्था में वोटों के ज़रिए ज़िन्दगी बेहतर बन सकती है, आज काफ़ी हद तक जनता के सामने नंगा हो चुका है। यह साबित हो चुका है कि पूँजीवादी व्यवस्था में जनतंत्र का कोई मतलब नहीं होता, बल्कि हर जगह पूँजी का ही ज़ोर चलता है। उन्होंने कहा कि मई दिवस का इतिहास गवाह है कि मज़दूर एकजुट होकर ही पूँजी की ताक़त का मुकाबला कर सकते हैं।

अखिल भारतीय नेपाली एकता मंच के नेता तेग बहादुर साही ने कहा कि मज़दूरों को धर्म, जाति, नस्ल, देश आदि के नाम पर बाँटा जाता रहा है, लेकिन सारी दुनिया के मज़दूरों के हित एक ही हैं। मई दिवस सारे विश्व के मज़दूरों को एक होने का आह्वान करते हुए हर तरह की लूट-खसोट, दमन, नाइंसाफ़ी के ख़िलाफ़ उठ खड़े होने की शिक्षा देता है। कारख़ाना मज़दूर यूनियन के संयोजक लखविन्दर ने कहा कि अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस कोई रस्म अदायगी का त्योहार न होकर मज़दूरों के न्यायपूर्ण संघर्ष को आगे बढ़ाने का संकल्प लेने का दिन है। इसी रूप में शिकागो के शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि दी जा सकती है। विभिन्न टोलियों ने क्रान्तिकारी गीत पेश किये और सम्मेलन की समापन पर इलाक़े की गलियों-मोहल्लों में क्रान्तिकारी नारे बुलन्द करते हुए मज़दूरों-नौजवानों ने पैदल रैली निकाली।

लुधियाना में टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, कारखाना मज़दूर यूनियन, नौजवान भारत सभा तथा अखिल भारतीय नेपाली एकता मंच की ओर से आयोजित 'मज़दूर दिवस सम्मेलन' में आये मज़दूरों का एक हिस्सा

उत्तर-पश्चिमी दिल्ली में मई दिवस

उत्तर-पश्चिमी दिल्ली में मई दिवस के अवसर पर बिगुल मज़दूर दस्ता, स्त्री मज़दूर संगठन और नौजवान भारत सभा की ओर से नरेला औद्योगिक क्षेत्र के शाहपुर गढ़ी की मज़दूर बस्ती तथा शाहबाद डेयरी की ई-ब्लॉक की झुग्गी बस्ती में जनसभा, पर्चा वितरण, नाटक, गीत व फ़िल्म शो आयोजन किया गया।

जनसभा में वक्ताओं ने कहा कि भारत के मज़दूरों की पहली जिम्मेदारी यह बनती है कि वे दुअन्नी-चवन्नी की आर्थिक लड़ाइयों और संसदीय चुनाव से बदलाव के भ्रमजालों से अपने को मुक्त करें तथा दलाल ट्रेड यूनियनों, गद्दार मज़दूर नेताओं और चुनावी पूंजीवादी पार्टियों को मज़दूर बस्तियों से लात मारकर बाहर खदेड़ दें। उन्हें मेहनतकश जनता को बाँटने वाली धार्मिक कट्टरपंथी फासिस्ट ताकतों और जातिवादी राजनीति के ठेकेदारों से भी लोहा लेना होगा। वक्ताओं का कहना था कि हमें बस्ती-बस्ती में नये सिरे से क्रान्तिकारी मज़दूर यूनियनें बनानी होंगी और बिखरे हुए, असंगठित मज़दूरों की भारी ताक़त को लामबन्द करना होगा। हुकूमत पर भारी जन दबाव बनाने के लिए और भावी मज़दूर सत्ता का बीज अंकुरित करने के लिए मज़दूरों को अपनी पंचायतें संगठित करनी होंगी। स्त्री मज़दूरों की इन यूनियनों और पंचायतों में भागीदारी बढ़ानी होगी और उनके अलग से संगठन भी बनाने होंगे।

मज़दूरों को मज़दूर क्रान्ति के विज्ञान, इतिहास और भावी रास्ते के नक्शे को जानना-समझना होगा। मज़दूरों के बहादुर युवा सपूतों को भगतसिंह के सपनों का मज़दूर राज्य बनाने के लिए भगतसिंह के बताये रास्ते पर चलना होगा और बस्ती-बस्ती में क्रान्तिकारी नौजवान संगठन बनाने होंगे।

सड़ाँध मारती संसदीय व्यवस्था के ऊपर व्यंग्य नाटक 'देख फकीरे लोकतंत्र का फूहड़ नंगा नाच' को स्थानीय आबादी ने खूब सराहा। कार्यक्रम में 'आ रे नौजवान' तथा 'पहले पहिल जब वोट माँगे अइलें' की भी प्रस्तुति हुई। मई दिवस पर बिगुल मज़दूर दस्ता द्वारा निर्मित लघु फिल्म 'लड़ाई जारी है' के प्रदर्शन के अलावा रूसी क्रान्ति पर बनी फिल्म 'दस दिन जब दुनिया हिल उठी' का भी प्रदर्शन किया गया।

शाहाबाद डेयरी में बारिश की रुकावट के बावजूद स्थानीय मज़दूरों, महिलाओं, नौजवानों और बच्चों ने कार्यक्रम में पूरे उत्साह के साथ भागीदारी की। कार्यक्रम के बाद वहां की जनसमस्याओं की पंचायत भी लगी।

– बिगुल संवाददाता

बिगुल मजदूर दस्ता और दिल्ली कामगार यूनियन की ओर से करावल नगर में मजदूर पंचायत

मई दिवस के अवसर पर बिगुल मजदूर दस्ता और दिल्ली कामगार यूनियन की ओर से करावल नगर में मजदूर पंचायत का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के दौरान बच्चों का नाटक 'तमाशा', विहान सांस्कृतिक मंच की ओर से नाटक 'मई दिवस की कहानी', संगीत कार्यक्रम आदि आयोजित किये गए। इस कार्यक्रम में भगाणा काण्ड संघर्ष समिति के जगदीश ने भी आकर मजदूरों को मई दिवस की बधाई दी व अपने संघर्ष के लिए एकजुटता का आह्वान किया।

श्रीलंका में मई दिवस और मज़दूर आन्दोलन के नये उभार के सकारात्मक संकेत

क्या आपको बाला ताम्पोई का नाम याद है? या, क्या आपने यह नाम सुना भी है? ये वही बाला ताम्पोई हैं जिनके नेतृत्व में 1953 में हुई ज़बरदस्त हड़ताल ने पूरे श्रीलंका को एकबारगी ठप्प सा कर दिया था।

बाला ताम्पोई इस माह 92 वर्ष के हो जायेंगे। वे भले-चंगे हैं, आज भी 'सीलोन मर्केन्टाइल यूनियन' के महासचिव हैं और देश के सर्वाधिक सक्रिय ट्रेडयूनियन नेताओं में से एक हैं।

श्रीलंका में इस बार अधिकांश ट्रेडयूनियनों ने एक साथ मिलकर बड़े स्तर पर मई दिवस की रैलियाँ आयोजित कीं और संसदीय राजनीतिक पार्टियों को इससे एकदम दूर रखा। बाला ताम्पोई का मानना है कि संसदीय राजनीति और नवउदारवादी राज्य से बढ़ते जुड़ाव ने गत दशकों के दौरान श्रीलंका के मज़दूर आन्दोलन को लगातार कमज़ोर बनाया है। श्रीलंका की अधिकांश वाम पार्टियाँ आज राष्ट्रपति महिन्दा राजपक्षे के नेतृत्व वाले सत्तारूढ़ गठबन्धन के साथ हैं जो निरंकुश सर्वसत्तावादी तौर-तरीक़ों से नवउदारवाद की नीतियों को लागू कर रहा है और जिसने तमिलों के विरुद्ध सर्वाधिक बर्बर दमनकारी सिंहल अन्धराष्ट्रवाद का परचम थाम रखा है। वाम संसदीय पार्टियों की इस नग्न-घृणित पतनशीलता ने अतिशोषण, अनौपचारिकीकरण, छँटनी, बेरोज़गारी, महँगाई और अनिश्चितता का कहर झेल रही मज़दूर आबादी को इन पार्टियों से एकदम दूर कर दिया है और भारी जनदबाव के चलते श्रीलंका का ट्रेडयूनियन आन्दोलन आज शुद्धीकरण और 'रैडिकलाइज़ेशन' की प्रक्रिया से गुज़र रहा है। एक ग़ौरतलब बात यह भी है कि पूरे श्रीलंकाई समाज में तमिल और सिंहल आबादी के बीच जो पार्थक्य और अन्तरविरोध पैदा हो गये हैं, उनसे मज़दूर आन्दोलन और ट्रेड यूनियनें अभी भी काफ़ी हद तक अछूती बची हुई हैं।

बाला ताम्पोई का मानना है कि नवउदारवादी नीतियों, उनकी पोषक राज्यसत्ता और संसदीय राजनीति के विरुद्ध देशव्यापी स्तर पर, नयी ज़मीन पर एक नया जुझारू मज़दूर आन्दोलन संगठित करना होगा। 'युनाइटेड वर्कर्स फ़ेडरेशन' के अध्यक्ष लीनस जयतिलके ने भी उनसे सहमति रखते हुए, मई दिवस की संयुक्त तैयारियों के दौरान एक पत्रकार मीरा श्रीनिवासन को बताया कि सभी सेक्टरों के मज़दूरों के बढ़ते अतिशोषण ने उनके आपसी सरोकारों और एक साथ मिलकर लड़ने की ज़रूरत के अहसास को बढ़ाया है। 'सीलोन वर्कर्स रेड फ़्लैग यूनियन' के महासचिव मेनाहा कण्डास्वामी के अनुसार, प्लाण्टेशन (बागान) मज़दूर (जिनमें भारी संख्या में तमिल मज़दूर हैं) काम के निर्धारित आठ घण्टों से बहुत अधिक काम करते हैं और श्रम क़ानूनों का वस्तुतः उनके लिए कोई मतलब नहीं रह गया है, इसलिए, अब एक बार फिर मज़दूर अधिकारों को लेकर नये सिरे से संघर्ष की शुरुआत करनी होगी।

ज़ाहिर है कि पतित होने के मामले में श्रीलंका की संसदीय वाम पार्टियाँ भी भारत की भाकपा, माकपा, भाकपा (माले) लिबरेशन, सोशलिस्ट यूनिटी सेण्टर, आर.एस.पी. और फ़ॉरवर्ड ब्लॉक आदि जैसी ही हैं। लेकिन दोनों देशों के मज़दूर आन्दोलनों में एक बुनियादी फ़र्क़ यह है कि भारत की सभी बड़ी ट्रेड यूनियनें जहाँ संसदीय वाम पार्टियों की पुछल्ली हैं और उनके नेतृत्व पर नीचे तक भ्रष्ट, पतित, दलाल ट्रेडयूनियन नौकरशाह कुण्डली मारकर बैठे हुए हैं, वहीं श्रीलंका की कई अग्रणी ट्रेड यूनियनें आज संसदीय वाम दलों से स्वतन्त्र स्टैण्ड ले रही हैं और एक साथ मिलकर नवउदारवाद के विरुद्ध रैडिकल मज़दूर संघर्ष संगठित करने के बारे में सोच रही हैं।

निश्चय ही यह एक महत्वपूर्ण आगे का क़दम है और राष्ट्रीयता के आधार पर श्रीलंका की आम आबादी में पैदा हुए शत्रुतापूर्ण बँटवारे को भी एकजुट संघर्ष ही दूर कर सकता है। लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं है। रैडिकल से रैडिकल ट्रेड यूनियन आन्दोलन अपने आप में मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक मिशन को पूरा करने का साधन नहीं हो सकता। मज़दूर वर्ग की एक बोल्शेविक साँचे-खाँचे वाली हरावल पार्टी होना अनिवार्य है।

श्रीलंका में षण्मुगथासन के नेतृत्व में संशोधनवाद के विरुद्ध कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के संघर्ष और मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी के गठन का इतिहास आधी सदी से भी अधिक पुराना है। लेकिन षण्मुगथासन के जीवनकाल में भी वहाँ पार्टी मज़दूर वर्ग में अपना व्यापक आधार नहीं बना सकी थी, न ही किसानों का कोई व्यापक संघर्ष खड़ा कर पाने में ही सफल हुई थी। आज भी वहाँ पुरानी पार्टी की उत्तराधिकारी एक माओवादी पार्टी है, लेकिन मेहनतकशों के बढ़ते आक्रोश को पहलक़दमी लेकर संगठित कर पाने में यह पार्टी विफल है।

आज का श्रीलंका एक पिछड़ा ही सही, लेकिन पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्धों वाला देश है, न कि अर्द्धसामन्ती-अर्द्धऔपनिवेशिक या नवऔपनिवेशिक। प्लाण्टेशन और चाय उद्योगों का लगातार विकास हुआ है और भूमि सम्बन्धों के क्रमिक रूपान्तरण (प्रशियाई मार्ग) की प्रक्रिया तो पचास के दशक में भी शुरू हो गयी थी। इन सच्चाइयों को समझे बग़ैर, दुनिया के अधिकांश माओवादी संगठनों की ही तरह श्रीलंका के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी भी चीन की नवजनवादी क्रान्ति के फ़्रेमवर्क को कठमुल्लावादी ढंग से श्रीलंका पर लागू करने पर बल देते रहे हैं, जबकि श्रीलंका भी वस्तुतः साम्राज्यवाद-विरोधी पूँजीवाद-विरोधी, नये प्रकार की समाजवादी क्रान्ति के दौर में प्रविष्ट हो चुका है। भूमि क्रान्ति के कार्यभार को प्रधान बताते हुए (हालाँकि ग़लत आकलन के कारण वे उस दिशा में भी कुछ नहीं कर पाये) श्रीलंका के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों ने भारी मज़दूर आबादी में काम करने पर कभी विशेष ध्यान नहीं दिया और वस्तुगत तौर पर उन्हें संशोधनवादियों के रहमोकरम पर छोड़ दिया।

अभी तो श्रीलंका की माओवादी पार्टी में और भी विचारधारात्मक विचलन के संकेत मिल रहे हैं। क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी, यू.एस.ए. के चेयरमैन बॉब अवाकिएन लेनिनवाद और माओवाद के "विकास की अगली कड़ी" के रूप में 'न्यू सिंथेसिस' नामक जो नया सिद्धान्त लेकर आये हैं (जो मार्क्सवाद की कुछ बुनियादी विचारधारात्मक अवस्थितियों से भटकाव है) उसे श्रीलंका की माओवादी पार्टी भी स्वीकार रही है।

लेकिन श्रीलंका का मज़दूर वर्ग यदि स्वयं अपने अनुभव से संसदवाद, अर्थवाद और ट्रेडयूनियनवाद से लड़ते हुए नवउदारवादी नीतियों और राज्यसत्ता के विरुद्ध एकजुट संघर्ष की ज़रूरत महसूस कर रहा है तो कालान्तर में उसकी हरावल पार्टी के पुनस्संगठित होने की प्रक्रिया भी अवश्य गति पकड़ेगी, क्योंकि श्रीलंका की ज़मीन पर मार्क्सवादी विचारधारा के जो बीज बिखरे हुए हैं, उन सभी के अंकुरण-पल्लवन-पुष्पन को कोई ताक़त रोक नहीं सकेगी। यदि कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों की एक पीढ़ी अपना दायित्व नहीं पूरा कर पायेगी, तो दूसरी पीढ़ी इतिहास के रंगमंच पर उसका स्थान ले लेगी।

– कविता कृष्णपल्लवी

भिवाड़ी के मज़दूरों के समर्थन में दिल्ली, लखनऊ और लुधियाना में विभिन्न संगठनों के प्रदर्शन

(पेज 4 से आगे)

पूँजीपतियों तथा पुलिस-प्रशासन के गँठजोड़ के विरुद्ध नारे लगाते हुए सचिवालय तक ज्ञापन देने जा रहे थे लेकिन पुलिस ने उन्हें विधानसभा के समक्ष ही रोक दिया। चुनाव आचार संहिता का हवाला देकर पुलिस अधिकारियों ने आगे बढ़ने की हर कोशिश को नाकाम कर दिया। इस दौरान प्रदर्शन में शामिल कवयित्री व सामाजिक कार्यकर्ता कात्यायनी तथा अन्य कार्यकर्ताओं के साथ धक्कामुक्की भी की गयी। काफी देर बहस के बाद पुलिस ने अपर नगर मजिस्ट्रेट (प्रथम) के माध्यम से ज्ञापन भिजवाने की व्यवस्था की तथा प्रदर्शनकारियों को जीपीओ पार्क में जाने के लिए कहा। जीपीओ पहुँचने पर वहाँ भी पुलिस दल-बल सहित पहुँच गयी तथा प्रदर्शन करने या पर्चे बाँटने से कार्यकर्ताओं को रोक दिया।

प्रदर्शनकारियों को सम्बोधित करते हुए कात्यायनी ने कहा कि इस घटना ने साफ कर दिया है कि अपने हक़ की आवाज़ उठाने का "गुनाह" करने पर मज़दूरों-कर्मचारियों और आम लोगों के ऊपर दमन का सोंटा चलाने में राजस्थान की भाजपा सरकार और उत्तर प्रदेश की सपा सरकार में कोई अन्तर नहीं है। यह घटना इस बात का भी संकेत है कि आम चुनाव के बाद सत्ता में चाहे जो भी आये मेहनतकश जनता के लिए किस प्रकार के "अच्छे दिन आने वाले हैं"!

ज्ञापन में सामाजिक कार्यकर्ताओं पर हमले के दोषी कम्पनी के अफ़सरों और भाड़े के गुण्डों को तत्काल गिरफ़्तार करके उन पर अपहरण और हत्या के प्रयास का मुकदमा चलाने तथा कम्पनी के एजेण्ट के बतौर काम करने वाले सिहानी गेट थाना, ग़ाज़ियाबाद के एस.एच.ओ. और अन्य पुलिसकर्मियों के विरुद्ध कठोर कार्रवाई करने की माँग की गयी है।

– बिगुल संवाददाता

श्रीराम पिस्टन, भिवाड़ी के मज़दूरों के आक्रोश का विस्फोट और बर्बर पुलिस दमन

(पेज 3 से आगे)

प्रशासन के मज़दूर-विरोधी रवैये के ख़िलाफ़ भिवाड़ी औद्योगिक क्षेत्र में रैली निकालेंगे और पूरे इलाक़े के मज़दूरों तक सन्देश ले जायेंगे कि राजस्थान सरकार पूरी तरह मालिकों के हाथों बिकी हुई है। साथ ही यूनियन जल्द ही ख़ुशखेड़ा औद्योगिक क्षेत्र में अपनी माँगों के समर्थन में मज़दूर एकता रैली निकालेगी। आज हुई जनसभा को गुड़गाँव मज़दूर संघर्ष सीमित से अजय, बिगुल मज़दूर दस्ता की शिवानी, एफ.एफ.सी रिको, ओमैक्स, मुंजल किरु, एटक से सचदेवा, न्यूयार्क ओटोमोबईल यूनियन से सुजैन, राने एन.एस.के. से पवन कुमार आदि ने सम्बोधित किया। सभा का संचालन श्रीराम पिस्टन के हरिकृष्णा ने किया।

गुड़गाँव मज़दूर संघर्ष समिति ने सभा में यूनियन के समक्ष तीन प्रस्ताव रखे। पहला, हमें श्रीराम पिस्टन के मज़दूर आन्दोलन को पूरे गुड़गाँव, मानसेर, धारूहेड़ा से लेकर बावल, भिवाड़ी के मज़दूरों तक पहुँचने के लिए एक परचा निकलना चाहिए, क्योंकि हमारे मुद्दे भी वहीं हैं जो पूरी औद्योगिक बेल्ट के मज़दूरों के हैं – यानी यूनियन बनाने की माँग, वर्कलोड कम करने की माँग, ठेकाप्रथा ख़त्म करने की माँग आदि। इसलिए अगर हमारे मुद्दे साझा हैं तो हमारा आन्दोलन भी साझा होना चाहिए। इसके लिए ज़रूरी है कि हम सेक्टरगत और इलाक़ाई आधार पर एकजुटता क़ायम करे। तभी हम मालिकों और उनकी चाकरी करने वाली सरकारें, पुलिस-प्रशासन को झुका सकते है। गुडगाँव मानसेर, धारूहेड़ा, बावल, भिवाड़ी के मज़दूरों को श्रीराम पिस्टन के मज़दूरों के संघर्ष में साथ देने के लिए अपने प्लाण्ट में कुछ घण्टों का टूलडाउन कर सकते है, लंच बहिष्कार कर सकते हैं या एक दिन की सामूहिक हड़ताल कर सकते हैं। दूसरा, हमें ग़ाज़ियाबाद प्लाण्ट के मज़दूरों के नाम अपील जारी करनी चाहिए और अपने समर्थन में लेने के लिए हरसम्भव प्रयास करना चाहिए। तभी हम पूरी तरह से श्रीराम पिस्टन के उत्पादन को ठप करके झुकने पर मजबूर कर सकते हैं। तीसरा, हमें दिल्ली में एक दिवसीय प्रदर्शन करना चाहिए, जिससे कि वसुन्धरा सरकार और बीजेपी पार्टी की राजधानी में पोल खोली जा सके। ये दावा करते हैं कि 'अच्छे दिन आने वाले' हैं पर साफ़ है कि चाहे गुजरात मॉडल हो या राजस्थान मॉडल, सब जगह मज़दूरों के श्रम की खुली लूट है और आवाज़ उठाने पर सरकार की लाठी-गोलियाँ मिलती हैं। इसलिए हमें समस्त पूँजीपतियों की चाकरी करने वाली पार्टियों के चेहरों को बेनकाब करना होगा। वैसे भी मज़दूरों ने अपने सारे हक़-अधिकार कुर्बानियाँ देकर ही हासिल किये हैं। इसलिए मज़दूरों की संघर्ष की जीत मज़दूरों की फ़ौलादी एकता के दम पर मिल सकती है, न की याचना करने से।

गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा- बावल भिवाड़ी के मज़दूरों की एकजुटता क़ायम करो!

गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल से लेकर भिवाड़ी और खुशखेड़ा तक के कारख़ानों में लाखों मज़दूर आधुनिक गुलामों की तरह खट रहे हैं। लगभग हर कारख़ाने में अमानवीय वर्कलोड, ज़बरन ओवरटाइम, वेतन में कटौती, ठेकेदारी, यूनियन अधिकार छीने जाने जैसे साझा मुद्दे हैं। हमें यह समझना होगा कि आज अलग-अलग कारख़ाने की लड़ाइयों को जीत पाना मुश्किल है। अभी हाल ही में हुए मारुति सुजुकी आन्दोलन से सबक लेना भी ज़रूरी है जो अपने साहसपूर्ण संघर्ष के बावजूद एक कारख़ाना-केन्द्रित संघर्ष ही रहा। मारुति सुजुकी मज़दूरों द्वारा उठायी गयीं ज़्यादातर माँगें – यूनियन बनाने, ठेकाप्रथा ख़त्म करने से लेकर वर्कलोड कम करने – पूरे गुड़गाँव से लेकर बावल तक की औद्योगिक पट्टी के मज़दूरों की थीं। लेकिन फिर भी आन्दोलन समस्त मज़दूरों के साथ सेक्टरगत-इलाक़ाई एकता कायम करने में नाकाम रहा। इसलिए हमें समझना होगा कि हम कारख़ानों की चौहद्दियों में कैद रहकर अपनी माँगों पर विजय हासिल नहीं कर सकते, क्योंकि हरेक कारख़ाने के मज़दूरों के समक्ष मालिकान, प्रबन्धन, पुलिस और सरकार की संयुक्त ताक़त खड़ी होती है, जिसका मुकाबला मज़दूरों के बीच इलाक़ाई और सेक्टरगत एकता स्थापित करके ही किया जा सकता है

दुनियाभर में पूँजीवादी संकट के बढ़ते कहर के ख़िलाफ़ मज़दूर जुझारू संघर्ष के लिए सड़कों पर उतर रहे हैं

भारत, बंगलादेश, पाकिस्तान और श्रीलंका से लेकर मलेशिया, इण्डोनेशिया, कोरिया, दक्षिण अफ़्रीका, ब्राज़ील, मेक्सिको, चीन, क्रोएशिया आदि देशों में एक के बाद उठ रहे जुझारू आन्दोलन इन देशों के उस मज़दूर वर्ग की बढ़ती बेचैनी और राजनीतिक चेतना का संकेत दे रहे हैं

पूँजीवादी व्यवस्था लाख कोशिश करके भी मन्दी की चपेट से निकल नहीं पा रही है। दरअसल इस वित्तीय संकट का कोई इलाज पूँजीवाद के पास है ही नहीं। नीम-हक़ीमों और वैद्यों ने जितने नुस्खे सुझाये हैं उनसे बस इतना होता है कि संकट नये-नये रूपों में फिर वापस लौट आता है। इन सारे नुस्ख़ों की एक ख़ासियत यह है कि पूँजीपतियों और उच्च वर्गों को राहत देने के लिए संकट का ज़्यादा से ज़्यादा बोझ मेहनतकशों और आम लोगों पर डाल दिया जाये। इसके कारण लगभग सभी देशों में सामाजिक सुरक्षा के व्यय में भारी कटौती, वास्तविक मज़दूरी में गिरावट, व्यापक पैमाने पर छँटनी, तालाबन्दी आदि का कहर मेहनतकश आबादी पर टूटा है। पिछले दो-ढाई दशकों के दौरान पूँजीवाद के काम करने के तौर-तरीक़ों में आये बदलावों के चलते भारी मज़दूर आबादी जिस तरह खण्ड-खण्ड में बिखेर दी गयी है और असंगठित है, उसके कारण पूँजी के इन हमलों के आगे मज़दूर लाचार और बेबस-सा दिखता रहा है। लेकिन पिछले दो-तीन वर्षों में तस्वीर तेज़ी से बदल रही है।

दुनिया भर में मज़दूर इस बर्बर लूट का जमकर प्रतिरोध कर रहे हैं और अपने अधिकारों के लिए सड़कों पर उतर रहे हैं। वैसे तो संकट की शुरुआत के साथ सरकारी ख़र्च घटाने के विभिन्न क़दमों के विरोध में अमेरिका और यूरोप के अनेक देशों में व्यापक प्रदर्शनों और हड़तालों का सिलसिला शुरू हो गया था जो अब भी जारी है। लेकिन पिछले 2-3 वर्षों के दौरान तीसरी दुनिया के पूँजीवादी देशों में उभर रहे मज़दूर संघर्ष इनसे काफ़ी अलग हैं। उन्नत पूँजीवादी देशों के मज़दूर, जो ज़्यादातर यूनियनों में संगठित हैं, मुख्यतया अपनी सुविधाओं में कटौती और रोज़गार के घटते अवसरों के विरुद्ध सड़कों पर उतरते रहे हैं। इनका बड़ा हिस्सा उस अभिजन मज़दूर वर्ग का है जिसे तीसरी दुनिया की जनता की बर्बर लूट से कुछ टुकड़े मिलते रहे थे और इसका जीवन काफ़ी हद तक सुखी और सुरक्षित था। ग्रीस जैसे देशों की स्थिति अलग है जो पहले भी दूसरी दुनिया के देशों की निचली कतार में थे और वित्तीय संकट की मार से लगभग तीसरी दुनिया की हालत में पहुँच गये हैं। मगर भारत, बंगलादेश, पाकिस्तान और श्रीलंका से लेकर मलेशिया, इण्डोनेशिया, कोरिया, दक्षिण अफ़्रीका, ब्राज़ील, मेक्सिको, चीन, क्रोएशिया आदि देशों में एक के बाद उठ रहे जुझारू आन्दोलन इन देशों के उस मज़दूर वर्ग की बढ़ती बेचैनी और राजनीतिक चेतना का संकेत दे रहे हैं जो हर तरह के अधिकारों से वंचित और सबसे बर्बर शोषण का शिकार है। बेहद कम मज़दूरी पर और बहुत ख़राब व ख़तरनाक स्थितियों में काम करने वाली यह विशाल मज़दूर आबादी तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में मज़दूरों के 90 प्रतिशत से अधिक है। इनका भारी हिस्सा असंगठित है और ठेका, दिहाड़ी, कैज़ुअल या पीसरेट पर काम करने वाले मज़दूरों का है। इन देशों में हो रहा पूँजीवादी विकास इसी विराट मज़दूर आबादी की हड्डियाँ निचोड़कर हो रहा है। इन्हीं मज़दूरों से चूसा गया ख़ून विकसित पूँजीवादी देशों की कम्पनियों के मुनाफ़े में ढलता है। बिखराव, संगठनविहीनता और पिछड़ी चेतना का शिकार यह मज़दूर वर्ग अब तक प्रायः कुछ रक्षात्मक संघर्षों या बीच-बीच में फूट पड़ने वाली उग्र झड़पों के विस्फोट तक सीमित रहा था। लेकिन दुनिया भर में जगह-जगह हो रहे आन्दोलन बताते हैं कि इसमें तेज़ी से अपने अधिकारों और एकजुटता की चेतना का संचार हो रहा है और यह पूँजी की ताक़तों से लोहा लेने के लिए तैयार हो रहा है। यह अलग बात है कि संघर्ष की दिशा, दूरगामी रणनीति और तैयारी के अभाव में ये आन्दोलन अभी ज़्यादा दूर नहीं जा पा रहे।

दुनिया का शायद सबसे विशाल सर्वहारा वर्ग, चीन के मज़दूर कम्युनिस्ट नामधारी पूँजीवादी शासकों की लुटेरी नीतियों के ख़िलाफ़ लगातार लड़ रहे हैं। नयी "महाशक्ति" के रूप में उभरते चीन के विकास की कहानी दुनियाभर की बड़ी-बड़ी कम्पनियों के लिए सस्ता और भरपूर उपलब्ध श्रम मुहैया कराने की चीनी शासकों की कुशलता पर टिकी है। बीजिंग, शंघाई, ग्वांगझाउ, चेंगदू, शेनझेन जैसे दर्जनों औद्योगिक इलाक़ों में करोड़ों-करोड़ मज़दूर भारत के मज़दूरों जैसे ही हालात में काम कर रहे हैं। बेहद कम मज़दूरी और भयंकर दमघोटू माहौल में 12-14 घण्टे काम, किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा नहीं, दड़बे जैसे कमरों में नर्क जैसी ज़िन्दगी। अन्धाधुन्ध मुनाफ़े की हवस में सारे सुरक्षा उपाय ताक पर धरकर कराये जाने वाले उत्पादन के चलते औद्योगिक दुर्घटनाओं के मामले में चीन पूरी दुनिया में सबसे आगे है। सरकारी ट्रेड यूनियनें मज़दूरों को कठोर नियन्त्रण में रखने के औज़ार भर हैं। वैसे भारी असंगठित मज़दूर आबादी इनसे बाहर है और उसे यूनियन बनाने का अधिकार ही नहीं है। विशाल और बेहद संगठित सरकारी दमनतन्त्र के साथ ही उद्योगपतियों की निजी सुरक्षा सेनाएँ मज़दूरों को आतंकित और नियन्त्रित करने के लिए तैनात रहती हैं। कठोर सरकारी नियन्त्रण में चलने वाले मीडिया में उनकी आवाज़ नहीं के बराबर आती है। लेकिन तमाम बन्दिशों के बावजूद चीन के मज़दूर लड़ाई के रास्ते पर हैं। चाइना लेबर बुलेटिन की एक रिपोर्ट के मुताबिक 2011 के मध्य से 2013 के अन्त तक चीन में मज़दूरों की 1170 हड़तालें और अन्य सामूहिक कार्रवाइयाँ हुईं। इनमें से 40 प्रतिशत से अधिक हड़तालें मैन्युफ़ैक्चरिंग सेक्टर में हुईं। सीएलबी के अनुसार वास्तविक संख्या इससे कहीं ज़्यादा है। निर्माण क्षेत्र के मज़दूरों ने पिछले कुछ महीनों में ही सैकड़ों हड़तालें और विरोध प्रदर्शन किये हैं। एप्पल कम्पनी के लिए आईपैड और आईफ़ोन बनाने वाली कुख्यात चीनी कम्पनी फ़ॉक्सकॉन की कई फ़ैक्टरियों में पिछले वर्ष मज़दूरों ने एक साथ की गयी हड़तालों की बदौलत कई माँगों पर कम्पनी को झुकने के लिए मजबूर कर दिया था। होण्डा की चीन स्थित कई इकाइयों के मज़दूरों ने भी एक साथ की गयी कार्रवाइयों से अपनी ताक़त दिखायी थी। इन दोनों ही मामलों में चीनी मज़दूरों ने मोबाइल और इण्टरनेट के ज़रिये एक-दूसरे से सम्पर्क और तालमेल करने का रास्ता निकाला था। इस रास्ते का इस्तेमाल अब चीनी मज़दूर बड़े पैमाने पर करने लगे हैं। पिछले दिनों चीन के कई शहरों में जूता कारख़ानों के मज़दूरों की एकजुट हड़ताल सरकार और मालिकों को कई माँगों पर झुकाने में कामयाब रही। इसमें 65,000 से अधिक मज़दूर शामिल हुए। मज़दूरों की कार्रवाइयों की सिर्फ़ संख्या और जुझारूपन ही नहीं बढ़ रहे हैं बल्कि सीएलबी के अनुसार उनमें राजनीतिक चेतना भी तेज़ी से बढ़ रही है। मज़दूरों के बढ़ते जुझारूपन का ही नतीजा है कि चीनी सरकार को एक के बाद एक कई सेक्टरों में मज़दूरी में बढ़ोत्तरी और सेवादशाओं में सुधार की घोषणाएँ करनी पड़ी हैं।

यूरोप में वित्तीय संकट की सबसे बुरी मार झेल रहे ग्रीस में मज़दूरों ने पिछले तीन वर्षों के दौरान लगभग दो दर्जन देशव्यापी आम हड़तालें करके सरकार को मज़दूरी और सामाजिक सुरक्षा में प्रस्तावित कटौतियाँ लागू करने से कई बार रोकने में सफलता हासिल की है। अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, यूरोपीय यूनियन और यूरोपीय केन्द्रीय बैंक सार्वजनिक क्षेत्र में बड़े पैमाने पर छँटनी और वेतन-भत्तों में कटौती के लिए ग्रीस की सत्ता पर लगातार दबाव डाल रहे हैं। सत्ता के दलाल यूनियन नेताओं की टालमटोल और कई बार हड़ताल से सीधे इन्कार के बावजूद मज़दूरों के भारी दबाव में उन्हें आम हड़तालों के आह्वान का समर्थन करने पर मजबूर होना पड़ा है। मज़दूरों ने स्थानीय स्तर पर स्वतन्त्र हड़ताल समितियाँ गठित करके हड़तालों को अनुष्ठानिक बना देने की नेताओं की कोशिशों को भी नाकाम कर दिया है। ग्रीस में नवनाज़ीवाद के उभार के विरुद्ध जुझारू लड़ाई में भी मज़दूर बढ़चढ़कर आगे रहे हैं। भूतपूर्व समाजवादी देशों में खुले पूँजीवाद के आने के बाद से अमीर-ग़रीब के बीच ध्रुवीकरण तेज़ी से बढ़ा है और महँगाई तथा बेरोज़गारी ने मज़दूरों की ज़िन्दगी बेहाल कर दी है। इनमें से कई देशों में भी पिछले दिनों जुझारू मज़दूर आन्दोलन हुए हैं। 44 प्रतिशत बेरोज़गारी झेल रहे बोस्निया में पिछले दिनों कई शहरों में हुए मज़दूरों के उग्र प्रदर्शनों में हज़ारों मज़दूरों ने पुलिस से मोर्चा लिया जिसमें करीब डेढ़ सौ पुलिसवाले ज़ख़्मी हो गये।

बंगलादेश में पिछले वर्ष राना प्लाज़ा की इमारत गिरने से 1100 से अधिक मज़दूरों की मौत के बाद से गारमेण्ट मज़दूरों के आन्दोलनों का सिलसिला थमने का नाम नहीं ले रहा है। बंगलादेश में क़रीब 40 लाख मज़दूर बेहद ख़राब हालात में गारमेण्ट उद्योग में काम करते हैं। इस घटना से कुछ ही महीने पहले ढाका की एक गारमेण्ट फ़ैक्ट्री में आग से 150 मज़दूर मारे गये थे। बंगलादेश में इस घटना से पहले पिछले 3 वर्ष में आग लगने या इमारत गिरने से 1800 से ज़्यादा गारमेण्ट मज़दूरों की मौत हो चुकी थी। राना प्लाज़ा की घटना के बाद सरकार और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की ओर से कुछ दिखावटी घोषणाओं के अलावा कोई ठोस कार्रवाई न होने से क्रुद्ध मज़दूरों ने मई दिवस के दिन देश के कई शहरों में जुझारू विशाल प्रदर्शन किये। उसके बाद सितम्बर और नवम्बर में भी गारमेण्ट मज़दूरों ने व्यापक विरोध प्रदर्शन आयोजित किये जिसके दबाव में सरकार को उनकी न्यूनतम मज़दूरी में 77 प्रतिशत बढ़ोत्तरी करनी पड़ी (हालाँकि अब भी यह बेहद कम है)। पाकिस्तान में भी गारमेण्ट मज़दूरों, रेलवे मज़दूरों और बन्दरगाह मज़दूरों के व्यापक जुझारू आन्दोलन पिछले दिनों हुए हैं।

इण्डोनेशिया, पापुआ-न्यू गिनी, फ़िलिप्पीन्स, मलेशिया आदि में पिछले दो वर्षों के दौरान अनेक जुझारू और लम्बे चलने वाले मज़दूर आन्दोलन हुए हैं। कम्पूचिया में जनवरी 2014 में हुए गारमेण्ट मज़दूरों के प्रदर्शनों के हिंसक दमन, जिसमें कम से कम पाँच मज़दूर पुलिस की गोली से मारे गये, के बावजूद मज़दूर संघर्षों का सिलसिला तेज़ हो रहा है। फरवरी के अन्तिम सप्ताह में 200 कारख़ानों के एक लाख से अधिक मज़दूरों ने ओवरटाइम करने से इन्कार कर दिया जो 12 मार्च को हुई आम हड़ताल तक जारी रहा। वहाँ मई दिवस के दिन भी देशभर में गारमेण्ट मज़दूरों ने बड़े और जुझारू प्रदर्शन किये। दक्षिण कोरिया में मज़दूरों के जुझारू प्रदर्शनों का सिलसिला पिछले 2-3 साल से लगातार जारी है।

दक्षिण अफ़्रीका में सबसे बड़ी यूनियन, सत्तारूढ़ अफ़्रीकी नेशनल कांग्रेस से जुड़ी कोसाटू का चरित्र पार्टी के सत्ता में आने और पूँजीवादी विकास का रास्ता अपनाने के साथ ही बदल चुका था। इसके कई नेता तो ख़ुद कम्पनियों के मोटे शेयरधारक बन चुके हैं। मगर वहाँ मज़दूरों की भारी आबादी सत्ताधर्मी यूनियनों से अलग हटकर अपनी बेहद बुरी स्थितियों के विरुद्ध संघर्ष कर रही है। पिछले वर्ष मरिकाना प्लेटिनम खदान में 33 मज़दूरों के बर्बर हत्याकाण्ड के बाद से इसमें और तेज़ी आयी है और कोसाटू का चरित्र और नंगा हुआ है। पिछले दिनों मेटलवर्कर्स की सबसे बड़ी यूनियन भी उससे अलग हो गयी है और खदान मज़दूरों की यूनियनों तथा अन्य वाम झुकाव वाले संगठनों से साथ आने का उसने आह्वान किया है। मिस्र में जनवरी 2011 के प्रदर्शनों में भी मज़दूरों ने बढ़चढ़कर हिस्सा लिया था, हालाँकि हुस्नी मुबारक को अपदस्थ करने वाले आन्दोलन में उन्हें उचित श्रेय नहीं दिया गया। उसके बाद भी मिस्र के मज़दूर लगातार अपनी आर्थिक और राजनीतिक माँगों को लेकर संघर्षरत हैं।

भारत में भी मज़दूरों की जुझारू लड़ाइयाँ देश के अलग-अलग कोनों में फूट पड़ रही हैं। इनमें भी असंगठित मज़दूरों या बड़ी यूनियनों से स्वतन्त्र छोटी-छोटी यूनियनों के नेतृत्व में लड़ रहे मज़दूरों की संख्या अधिक है। पिछले वर्ष केन्द्रीय यूनियनों द्वारा आयोजित अनुष्ठानिक हड़ताल में भी नेताओं की उम्मीद से आगे जाकर असंगठित मज़दूरों ने नोएडा, अम्बाला आदि कई जगह उग्र और जुझारू कार्रवाइयाँ कीं। अकेले ऑटोमोबाइल सेक्टर में पिछले दो-तीन साल में देशभर में 100 से अधिक हड़तालें और उग्र सामूहिक कार्रवाइयाँ हुई हैं। गुड़गाँव और उसके आसपास के विशाल औद्योगिक क्षेत्र में मज़दूर हड़तालों, आन्दोलनों और आक्रोश के उग्र विस्फोटों का सिलसिला बर्बर दमन के बावजूद रुकने का नाम नहीं ले रहा। अपने असहनीय हालात के ख़िलाफ़ आज जगह-जगह मज़दूरों के स्वतःस्फूर्त संघर्ष उठ रहे हैं। लेकिन इन संघर्षों में हस्तक्षेप करके उन्हें एक क्रान्तिकारी दिशा देने की कोशिश करने के बजाय अनेक क्रान्तिकारी संगठनों में इस स्वतःस्फूर्तता का जश्न मनाने की प्रवृत्ति दिखायी दे रही है। इसके विरुद्ध संघर्ष करना भी आज बेहद ज़रूरी है।

आज पूँजीवाद के बढ़ते संकट के दौर में अपना मुनाफ़ा बनाये रखने के लिए पूँजीपति मज़दूरों की हड्डियाँ तक निचोड़ डाल रहे हैं। लेकिन मज़दूर भी अब चुपचाप बर्दाश्त नहीं कर रहे। पूरी दुनिया में सन्नाटा टूट रहा है। मज़दूर वर्ग नये सिरे से जाग रहा है। ऐसे में मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी हरावलों के सामने मज़दूर आन्दोलन के क्रान्तिकारी पुनर्जागरण में जी-जान से जुट जाने की चुनौती है।

– सत्यम

कॉमरेड सुनीति कुमार घोष को लाल सलाम!

वयोवृद्ध कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी नेता, सिद्धान्तकार और इतिहासकार कॉमरेड सुनीति कुमार घोष का 94 वर्ष की आयु में 11 मई को कोलकाता में निधन हो गया।

का. घोष नक्सलबाड़ी किसान उभार से शुरू हुए कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन के नेतृत्व के अन्तिम जीवित सदस्यों में से एक थे। वे 1968 में गठित ऑल इंडिया कोआर्डिनेशन कमिटी ऑफ कम्युनिस्ट रिवोल्यूशनरीज (एआईसीसीसीआर) की नेतृत्वकारी टीम के सदस्य थे और 1970 में सीपीआई (एमएल) के गठन के बाद उसकी पहली केंद्रीय कमेटी के सदस्य थे। सीपीआई (एमएल) के मुखपत्र 'लिबरेशन' के वे पहले संपादक थे। चारु मजूमदार के निधन के बाद 1974 में आन्दोलन के पुनर्गठन के लिए जब केंद्रीय सांगठनिक कमेटी (सीओसी), सीपीआई (एमएल) का गठन हुआ तो वे उसके भी नेतृत्व का हिस्सा थे। 1977 में सीओसी के विघटन के बाद वे कुछ दिनों तक सक्रिय राजनीति कार्रवाइयों से जुड़े रहे। उसके बाद उन्होंने अपना धयान सैद्धान्तिक लेखन और कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आंदोलन के इतिहास के दस्तावेजों के संकलन पर केंद्रित किया। उनके संपादन में दो खंडों में 'लिबरेशन' में प्रकाशित महत्वपूर्ण लेखों का संकलन 'लिबरेशन एंथोलॉजी' प्रकाशित हुआ।

इसके अतिरिक्त भारत के पूंजीपति वर्ग पर केंद्रित उनकी पुस्तक 'द इंडियन बिग बुर्जुआजी' काफी चर्चा में रही। भारत में संविधान निर्माण के इतिहास और उसकी प्रकृति पर उनकी एक पुस्तिका 'द इंडियन कांस्टिट्यूशन एंड इट्स रिव्यू', रिसर्च यूनिट फॉर पोलिटिकल इकॉनमी द्वारा प्रकाशित हुई। राष्ट्रीयता की समस्या पर उनकी पुस्तक 'इंडियाज नेशनेलिटी क्वेश्चन एंड रूलिंग क्लासेज़' तथा भारत-चीन युद्ध पर 'द हिमालयन एडवेंचर' शीर्षक उनकी पुस्तक भी काफी चर्चित रही हैं। उन्होंने कई अन्य पुस्तिकाएँ तथा राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं में महत्वपूर्ण लेख भी लिखे।

का. सुनीति कुमार घोष अपनी अंतिम सांस तक मार्क्सवाद-लेनिनवाद के प्रति समर्पित बने रहे और उसकी क्रान्तिकारी अन्तर्वस्तु की हिफाजत के लिए सचेष्ट रहे। अन्तिम सांस तक वे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन के पुनर्निर्माण की समस्याओं और चिन्ताओं से जूझते रहे। भारतीय सर्वहारा के इस योद्धा को हम अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और उनका क्रान्तिकारी अभिवादन करते हैं।

विदा कॉमरेड मुकुल सिन्हा! लाल सलाम!!

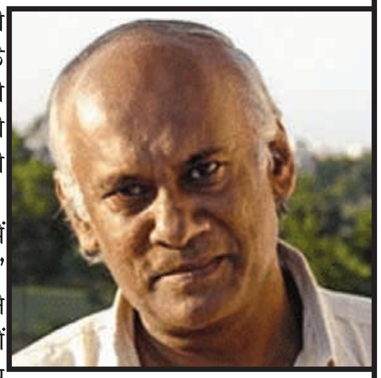

साम्प्रदायिक फासीवाद विरोधी अभियान के अनथक योद्धा, नागरिक अधिकार कर्मी और वामपंथी ऐक्टिविस्ट कॉमरेड मुकुल सिन्हा का निधन आज के कठिन समय में जनवादी अधिकार आंदोलन और वामपंथ के लिए एक भारी क्षति है, जिसकी पूर्ति आसानी से संभव नहीं।

एक वर्ष पहले उनके फेफड़ों में कैंसर का पता चला था। लगातार लंबे और यंत्रणादायी इलाज के बावजूद, अहमदाबाद में रहते हुए मुकुल वहाँ मोदी की तानाशाही के ख़िलाफ़ विरोध का परचम उठाये रहे और 2002 के गुजरात नरसंहार के पीड़ितों के मुकदमे लड़ते रहे। गुजरात की सच्चाई पूरे देश के सामने लाने में सोशल नेटवर्किंग साइट्स का भरपूर इस्तेमाल करते हुए उन्होंने अहम भूमिका निभाई। बीमारी के दौरान उनके इस काम को आगे बढ़ाने में पत्नी निर्झरी सिन्हा और बेटे प्रतीक सिन्हा ने पूरी मदद की।

मुकुल का पूरा जीवन आम लोगों और न्याय के लिए अनवरत संघर्षरत जुझारू योद्धा जीवन था। कलकत्ता के एक निम्नमधयवर्गीय परिवार में 1951 में जन्मे मुकुल सिन्हा ने आई.आई.टी. कानपुर से भौतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के बाद 'फिजिकल रिसर्च लेबोरेट्री' (पी.आर.एल.), अहमदाबाद में शोध की शुरुआत की और फिर वहीं शोध पूरा करने के बाद वैज्ञानिक के रूप में काम करने लगे। वहीं रिसर्च असिस्टेंट के रूप में कार्यरत निर्झरी से 1977 में उनका प्रेम हुआ और फिर वे जीवनसाथी बन गये।

13 सितम्बर 1979 मुकुल की जिन्दगी का एक मोड़बिन्दु था जब एक साथ 133 लोगों को विश्वविद्यालय प्रशासन ने पी.आर.एल. से निकाल दिया। मुकुल ने एक ट्रेड यूनियन बनाकर कर्मचारियों के अधिकारों के लिए लड़ना शुरू कर दिया। कुछ ही महीने बाद वे भी नौकरी से बर्खास्त कर दिये गये।

इस बर्खास्तगी से मुकुल बहुत खुश थे। पी.आर.एल. जैसी भारतीय संस्थाओं में शोध की निरर्थकता वे जान चुके थे। वे कहा करते थे कि अपने साथी वैज्ञानिकों की तरह "जीवाश्म" बन जाने के बजाय वे समाज के लिए कुछ सार्थक करना चाहते थे। नौकरी छोड़ने के बाद मुकुल एक जुझारू और व्यस्त ट्रेड यूनियन संगठनकर्ता का जीवन जीने लगे थे। पर मात्र इतने से उन्हें चौन नहीं था। वे यह समझने लगे थे कि ट्रेड यूनियन संघर्षों की एक सीमा है और मज़दूर वर्ग को राजनीतिक संघर्ष में दखल देना होगा। उन्होंने मार्क्सवाद का गहन अधययन शुरू किया। भाकपा, माकपा जैसी पार्टियों के संशोधनवाद को समझने के साथ ही वे "वामपंथी" दुस्साहसवाद के भी विरोधी थे। अंतत: वे इस नतीजे पर पहुंचे कि भारत में एक मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी नये सिरे से बनानी होगी और भारतीय क्रान्ति का कार्यक्रम नवजनवादी क्रान्ति का नहीं बल्कि समाजवादी क्रान्ति का होगा। लगभग इसी समय, 1986 के आसपास, उनका हम लोगों से सम्पर्क हुआ था।

मुकुल ने मज़दूरों की क़ानूनी लड़ाइयाँ लड़ने और नागरिक अधिकार कार्यकर्ता की प्रभावी भूमिका निभाने के लिए 1990 में क़ानून की डिग्री ले ली थी और इसी वर्ष 'जन संघर्ष मंच' की स्थापना की।

1990 में गोरखपुर में 'मार्क्सवाद ज़िन्दाबाद मंच' की ओर से हम लोगों ने समाजवाद की समस्याओं पर जब पाँच दिवसीय अखिल भारतीय संगोष्ठी की थी, तो उसमें मुकुल मज़दूर आन्दोलन की कुछ क़ानूनी व्यस्तताओं के कारण पहुंच नहीं सके, लेकिन उनके द्वारा भेजे गये दो विनिबन्ध सेमिनार में पढ़े गये और उन पर लम्बी और गम्भीर चर्चा हुई। पहला विनिबन्ध स्तालिन कालीन समाजवादी प्रयोगों पर केन्द्रित था और दूसरा चीन की पार्टी की विचारधारात्मक अवस्थितियों पर।

1992 में आडवाणी की रथयात्रा के बाद गुजरात में बने साम्प्रदायिक माहौल में मुकुल ने मज़दूर आन्दोलन के साथ अपना ज़्यादा से ज़्यादा समय साम्प्रदायिकता-विरोधी मुहिम को देना शुरू कर दिया। गुजरात-2002 के बाद तो वे दंगा पीड़ितों और मुठभेड़ के फर्जी मामलों से संबंधित मुक़दमों की पैरवी और मोदी की कारगुजारियों का पूरे देश में पर्दाफ़ाश करने की व्यस्तताओं में आकण्ठ डूब गये। जान का जोखिम लेकर भी वे अन्तिम साँस तक अपने इस काम में लगे रहे।

अपने राजनीतिक प्रोजेक्ट को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने 'न्यू सोशलिस्ट मूवमेंट' नामक एक मंच की स्थापना भी की थी लेकिन गुजरात-2002 से जुड़े क़ानूनी मामलों और मोदी-विरोधी मुहिम की व्यस्तताओं के कारण अपनी मार्क्सवादी विचारधारात्मक-राजनीतिक परियोजना पर वे पर्याप्त धयान नहीं दे पाये।

बावजूद इसके, सामयिक राजनीतिक मुद्दों पर, बीच-बीच में, वे गम्भीर विश्लेषणात्मक लेख और टिप्पणियाँ लिखते रहते थे। पिछले दिनों अन्ना हजारे के जनलोकपाल पर तथा भ्रष्टाचार और काले धन के सवाल पर उन्होंने मार्क्सवादी दृष्टि से जो गम्भीर विश्लेषणात्मक लेख लिखे थे, वे काफी चर्चा में रहे।

का. मुकुल सिन्हा किताबी आदमी नहीं थे। वे विचारों और व्यवहार की दुनिया में समान रूप से सक्रिय थे। वे सच्चे अर्थों में जनता के पक्ष में खड़े बुद्धिजीवी थे और न्याय-संघर्ष के जुझारू योद्धा थे।

हम उन्हें अपनी हार्दिक क्रान्तिकारी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

– बिगुल मज़दूर दस्ता, नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन, राहुल फाउण्डेशन और अरविन्द स्मृति न्यास

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के औद्योगिक इलाक़ों में सतह के नीचे आग धधक रही है!

(पेज 1 से आगे)

हमले के विरोध में उपजे इस आक्रोश के विस्फोट को उस समय रोकना भी सम्भव नहीं था। प्लाण्ट के बाहर, प्रबन्धन की तमाम कोशिशों के बावजूद मज़दूरों का धरना अब भी जारी है।

श्रीराम पिस्टन फ़ैक्टरी की यह घटना न सिर्फ़ हीरो होण्डा, मारुति सुजुकी और ओरियण्ट क्राफ्ट के मज़दूर संघर्षों की अगली कड़ी है, बल्कि पूरे गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल-भिवाड़ी की विशाल औद्योगिक पट्टी में मज़दूर आबादी के भीतर, और विशेषकर आटोमोबाइल सेक्टर के मज़दूरों के भीतर सुलग रहे गहरे असन्तोष का एक विस्फोट मात्र है। यह आग तो सतह के नीचे पूरे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के औद्योगिक इलाक़ों में धधक रही है, जिसमें दिल्ली के भीतर के औद्योगिक क्षेत्रों के अतिरिक्त नोएडा, ग्रेटर नोएडा, साहिबाबाद, फ़रीदाबाद, बहादुरगढ़ और सोनीपत, पानीपत के औद्योगिक क्षेत्र भी आते हैं। राजधानी के महामहिमों के नन्दन कानन के चारों ओर आक्रोश का एक वलयाकार दावानल भड़क उठने की स्थिति में है।

मज़दूरों के ख़िलाफ़ पूँजीपतियों के पक्ष में सरकार, नेताशाही, अफ़सरशाही, न्यायपालिका से लेकर कारपोरेट घरानों का मीडिया तक सब एकजुट हैं। मारुति सुजुकी में 18 जुलाई 2012 को हुई हिंसा की घटना के बाद से संदिग्ध हालात में हुई एक मैनेजर की मौत के मामले में 147 मज़दूर आज भी जेल में हैं जबकि सैकड़ों मज़दूरों और कई स्वतंत्र जाँच टीमों के आरोपों के बावजूद मैनेजमेण्ट के ख़िलाफ़ जाँच का आदेश भी नहीं दिया गया है। इन मज़दूरों को ज़मानत देने से इंकार करते हुए जज का कहना था कि अगर ज़मानत दे दी गयी तो इससे भारत में "पूँजी निवेश करने वालों को ग़लत सन्देश जायेगा"। यानी जज महोदय साफ कह रहे थे कि इंसाफ़ जाये भाड़ में, पूँजीपतियों के हितों को कोई नुकसान नहीं पहुँचना चाहिए।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ-वहाँ स्वत:स्फूर्त ढंग से भड़क उठने वाले मज़दूर संघर्षों के विस्फोट यदि कुछ व्यापक भी हो जायें, तो भी नवउदारवाद के इस दौर में सत्ता उन्हें हर क़ीमत पर कुचलने के लिए तैयार बैठी है। इन संघर्षों को आनन-फानन में पहुँचकर, समर्थन देकर जो संगठन स्वत:स्फूर्तता की पूजा मात्र करके कुछ लाभ उठाने की कोशिश करते हैं, वे वस्तुगत तौर पर, आख़िरकार, मज़दूर आन्दोलन को नुकसान ही पहुँचाते हैं। सबसे पहले, ज़रूरी यह है कि एक सेक्टर विशेष के सभी कारख़ानों के मज़दूरों (जैसे समूचे आटोमोबाइल सेक्टर के मज़दूर) को एक साथ संगठित करने की कोशिश की जाये ताकि वे एक साथ अपनी माँगें उठायें और यदि किसी एक कारख़ाने में मालिक उत्पीड़न करें या कोई आन्दोलन हो, तो एक साथ पूरे सेक्टर के सभी कारख़ानों को ठप्प कर देने की स्थिति हो। दूसरे, अलग-अलग सेक्टरों के मज़दूरों की आपसी एकता बनाने की कोशिश भी शुरू कर देनी होगी और उन्हें इलाक़ाई पैमाने पर संगठित करना होगा। इसका आज एक वस्तुगत आधार है, क्योंकि सभी सेक्टरों में मज़दूरों की बहुसंख्यक आबादी असंगठित है और उनकी ज़्यादातर माँगें एक समान हैं। बेशक यह काम लम्बा होगा। इसके लिए मज़दूरों के बीच राजनीतिक प्रचार एवं 'एजिटेशन' की लम्बी एवं सघन कार्रवाई चलानी होगी। इस काम में मालिकों और प्रशासन के अतिरिक्त चुनावी पार्टियों और संशोधनवादियों की दुकानदारी के रूप में चलने वाली यूनियनों के नौकरशाह और दल्ले भी काफ़ी अड़चनें पैदा करेंगे। लेकिन आज की परिस्थितियों में, मज़दूर संघर्ष को एकमात्र इसी रणनीति के द्वारा आगे बढ़ाया जा सकता है इसलिए हमें इसी दिशा में अपनी पूरी ताक़त लगानी चाहिए।

मारुति सुजुकी के मुकदमे के दौरान कम्पनी के एक अफ़सर ने मैनेजमेण्ट की ओर से की गयी कार्रवाइयों को सही ठहराते हुए कहा कि यह वास्तव में एक "वर्ग युद्ध" है। हमारे दुश्मनों के दिमाग़ में कोई भ्रम नहीं है। हमें भी तमाम भ्रमों से मुक्त होकर इस वर्ग युद्ध में सही रणनीति के साथ लड़ने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

मोदी की जीत और मज़दूर वर्ग के लिए इसके मायने

फासीवाद का मुकाबला सड़कों पर करने के लिए हमें तैयार रहना होगा!

(पेज 1 से आगे)

रही-सही कसर रिकार्डतोड़ घपलों-घोटालों ने पूरी कर दी। 'आप' पार्टी पर भी पूँजीपति वर्ग के एक हिस्से ने और साम्राज्यवादी पूँजी ने दाँव लगाया था, और उसके नेता बार-बार आश्वासन दे रहे थे कि वे भ्रष्टाचार इसीलिए दूर करना चाहते हैं ताकि पूँजीपतियों को "ईमानदारी" से अपना काम करने का पूरा मौका मिल सके। लेकिन शुरू से ही पूँजीपति वर्ग के बड़े हिस्से की पहली पसन्द मोदी ऐंड कम्पनी ही थी और लगातार कोशिशों के ज़रिये वह साम्राज्यवादी पूँजी को भी भरोसा दिलाने में कामयाब रहे कि उनके हितों का अच्छी तरह ख़्याल रखा जायेगा।

मोदी का सत्ता में आना पूरी दुनिया में चल रहे सिलसिले की ही एक कड़ी है। नवउदारवाद के इस दौर में पूँजीवादी व्यवस्था का संकट जैसे-जैसे गम्भीर होता जा रहा है, वैसे-वैसे दुनियाभर में फासीवादी उभार का एक नया दौर दिखायी दे रहा है। ग्रीस, स्पेन, इटली, फ्रांस और उक्रेन जैसे यूरोप के कई देशों में फासिस्ट किस्म की धुर दक्षिणपंथी पार्टियों की ताक़त बढ़ रही है। अमेरिका में भी टी-पार्टी जैसी धुर दक्षिणपंथी शक्तियों का प्रभाव बढ़ रहा है। नव-नाज़ी ग्रुपों का उत्पात तो इंग्लैण्ड, जर्मनी, नार्वे जैसे देशों में भी तेज़ हो रहा है। तुर्की, इंडोनेशिया जैसे देशों में पहले से निरंकुश सत्ताएँ क़ायम हैं जो पूँजीपतियों के हित में जनता का कठोरता से दमन कर रही हैं। हाल के वर्षों में कई जगह ऐसी ताकतें सीधे या फिर दूसरी बुर्जुआ पार्टियों के साथ गठबन्धन में शामिल होकर सत्ता में आ चुकी हैं। जहाँ वे सत्ता में नहीं हैं, वहाँ भी बुर्जुआ जनवाद और फासीवाद के बीच की विभाजक रेखा धूमिल-सी पड़ती जा रही है और सड़कों पर फासीवादी उत्पात बढ़ता जा रहा है।

हमने पहले भी लिखा था कि मोदी सत्ता में आये या न आये, भारत में सत्ता का निरंकुश दमनकारी होते जाना लाज़िमी है। सड़कों पर फासीवादी उत्पात बढ़ता जायेगा। फासीवाद विरोधी संघर्ष का लक्ष्य केवल मोदी को सत्ता में आने से रोकना नहीं हो सकता। इतिहास का आज तक का यही सबक रहा है कि फासीवाद विरोधी निर्णायक संघर्ष सड़कों पर होगा और मज़दूर वर्ग को क्रान्तिकारी ढंग से संगठित किये बिना, संसद में और चुनावों के ज़रिए फासीवाद को शिकस्त नहीं दी जा सकती। फासीवाद विरोधी संघर्ष को पूँजीवाद विरोधी संघर्ष से काटकर नहीं देखा जा सकता। पूँजीवाद के बिना फासीवाद की बात नहीं की जा सकती। फासीवाद विरोधी संघर्ष एक लम्बा संघर्ष है और उसी दृष्टि से इसकी तैयारी होनी चाहिए। अब जबकि मोदी सत्ता में आ चुका है, तो ज़ाहिर है कि हमारे सामने एक फौरी चुनौती आ खड़ी हुई है। हमें इसके लिए भी तैयार रहना होगा।

पूँजीवादी संकट का यदि समाजवादी समाधान प्रस्तुत नहीं हो पाता तो फासीवादी समाधान सामने आता ही है। मार्क्सवाद के इस विश्लेषण को इतिहास ने पहले कई बार साबित किया है। फासीवाद हर समस्या के तुरत-फुरत समाधान के लोकलुभावन नारों के साथ तमाम मध्यवर्गीय जमातों, छोटे कारोबारियों, सफ़ेदपोश कर्मचारियों, छोटे उद्यमियों और मालिक किसानों को लुभाता है। उत्पादन प्रक्रिया से बाहर कर दी गयी मज़दूर आबादी का एक बड़ा हिस्सा भी फासीवाद के झण्डे तले गोलबन्द हो जाता है जिसके पास वर्ग चेतना नहीं होती और जिनके जीवन की परिस्थितियों ने उनका लम्पटीकरण कर दिया होता है। निम्न मध्यवर्ग के बेरोज़गार नौजवानों और पूँजी की मार झेल रहे मज़दूरों का एक हिस्सा भी अन्धाधुन्ध प्रचार के कारण मोदी जैसे नेताओं द्वारा दिखाये सपनों के असर में आ जाता है। जब कोई क्रान्तिकारी सर्वहारा नेतृत्व उसकी लोकरंजकता का पर्दाफाश करके सही विकल्प प्रस्तुत करने के लिए तैयार नहीं होता तो फासीवादियों का काम और आसान हो जाता है। आरएसएस जैसे संगठनों द्वारा लम्बे समय से किये गये प्रचार से उनको मदद मिलती है। भूलना नहीं चाहिए कि संघियों के प्रचार तंत्र का असर मज़दूर बस्तियों तक में है। बड़े पैमाने पर संघ के वीडियो और ऑडियो टेप मज़दूरों के मोबाइल फोन में पहुँच बना चुके हैं। बहुत-सी जगहों पर ग़रीबों की कालोनियों और मज़दूर बस्तियों में भी संघ की शाखाएँ लगने लगी हैं।

मोदी की जीत के बाद ज़रूरी नहीं कि तुरन्त दंगे और अल्पसंख्यकों पर हमले शुरू हो जायेंगे। संघ परिवार को दशकों की तैयारी के बाद इस बार जो मौक़ा मिला है उसका पूरा फ़ायदा उठाकर वह लम्बे समय तक सत्ता में बने रहने की योजना पर काम कर रहा है। यह तय है कि भाजपा गठबंधन के शासन का सबसे अधिक कहर मज़दूर वर्ग पर बरपा होगा। उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को ख़ूनी ख़ंज़र हाथ में थामकर लागू किया जायेगा। मुनाफ़ाख़ोरों की तिजोरियाँ भरने के लिए मज़दूरों की हड्डियों तक को निचोड़ने की खुली छूट दी जायेगी। ट्रेड यूनियनों के लिए मज़दूरों-कर्मचारियों के आर्थिक मुद्दों की लड़ाई लड़ना भी मुश्किल हो जायेगा। सरकारी परिसम्पत्तियों को औने-पौने दामों पर पूँजीपतियों के हवाले किया जायेगा और जनता को मिलने वाली सरकारी सुविधाओं में और अधिक कटौती की जायेगी। देशी-विदेशी पूँजीपतियों को और बिल्डर लॉबी को कौड़ियों के मोल ज़मीनें दी जायेंगी, किसानों और आदिवासियों को जबरिया बेदखल किया जायेगा और प्रतिरोध की हर कोशिश को लोहे के हाथों से कुचल देने की कोशिश की जायेगी। जनवादी अधिकार आन्दोलन को विशेष तौर पर हमले का निशाना बनाया जायेगा और जनवादी अधिकार कर्मियों को "देशद्रोह" जैसे अभियोग लगाकर जेलों में ठूँसा जायेगा। सरकार एकदम नंगे ढंग से पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी बनकर काम करेगी। मोदी जब कहता है कि वह 'मज़दूर' की तरह सेवा करेगा तो उसका मतलब यही है कि वह अपने आकाओं की सेवा करने में जीजान एक कर देगा, जैसाकि उसने गुजरात में किया है।

यह भी सही है कि धार्मिक अल्पसंख्यकों को एक 'आतंक राज' के मातहत दोयम दर्जे का नागरिक बनकर जीना होगा। गुजरात में 2002 के नरसंहार के बाद दंगे नहीं हुए क्योंकि अब इसकी ज़रूरत ही नहीं थी। वहाँ अल्पसंख्यकों को बुरी तरह दबाकर, आतंकित करके, कोने में धकेलकर उनकी स्थिति बिल्कुल दोयम दर्जे की बना दी गयी है। यही 'गुजरात मॉडल' देशभर में लागू करने की कोशिश की जायेगी। दलितों का उत्पीड़न अपने चरम पर होगा। देशभर में अपनी सैकड़ों रैलियों में और दर्जनों टीवी इंटरव्यू में मोदी ने क्या कभी एक शब्द भी बर्बर बलात्कार की शिकार भगाणा की उन दलित बच्चियों के लिए बोला जो इंसाफ़ की माँग के लिए तीन सप्ताह से जन्तर-मन्तर पर बैठी हुई हैं? संघ परिवार की विचारधारा में दलितों और स्त्रियों के विरुद्ध जैसा विष भरा हुआ है उसमें इस बात की उम्मीद करना भी बेमानी है। आने वाले समय में मोदी की आर्थिक नीतियों का बुलडोज़र जब चलेगा तो अवाम में बढ़ने वाले असन्तोष को भटकाने के लिए साम्प्रदायिक और जातिगत आधार पर मेहनतकश जनता को बाँटकर उसकी वर्गीय एकजुटता को ज़्यादा से ज़्यादा तोड़ने की कोशिशें की जायेंगी। देश के भीतर के असली दुश्मनों से ध्यान भटकाने के लिए उग्र अन्धराष्ट्रवादी नारे दिये जायेंगे और सीमाओं पर तनाव पैदा किये जायेंगे। संघ परिवार और पूँजीपति वर्ग नहीं चाहें कि अभी दंगे भड़कें ताकि उद्योग-व्यापार में कोई बाधा न आये, तो भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि इन्हीं के द्वारा पैदा किये माहौल में इनके अनगिनत संगठनों के चरमपंथी तत्वों के उत्पात के कारण दंगे शुरू हो जायें। पूँजीपति वर्ग फासीवाद को ज़ंजीर से बँधे कुत्ते की तरह इस्तेमाल करना चाहता है ताकि जब असन्तोष की आँच उस तक पहुँचने लगे तो ज़ंजीर को ढीला करके जनता को डराने और आतंकित करने में इसका इस्तेमाल किया जा सके। लेकिन कई बार कुत्ता उछलकूद करते-करते ज़ंजीर छुड़ाकर अपने मालिक की मर्ज़ी से ज़्यादा ही उत्पात मचा डालता है। इसलिए मेहनतकशों, नौजवानों और सजग-निडर नागरिकों को चौकस रहना होगा। उन्हें ख़ुद साम्प्रदायिक उन्माद में बहने से बचना होगा और उन्माद पैदा करने की किसी भी कोशिश को नाकाम करने के लिए सक्रिय हस्तक्षेप करने का साहस जुटाना होगा।

फासीवादी उभार के लिए उन संशोधनवादियों, संसदमार्गी नकली कम्युनिस्टों और सामाजिक जनवादियों को इतिहास कभी नहीं माफ कर सकता, जिन्होंने पिछले कई दशकों के दौरान मात्र आर्थिक संघर्षों और संसदीय विभ्रमों में उलझाकर मज़दूर वर्ग की वर्गचेतना को कुण्ठित करने का काम किया। ये संशोधनवादी फासीवाद-विरोधी संघर्ष को मात्र चुनावी हार-जीत के रूप में ही प्रस्तुत करते रहे, या फिर सड़कों पर मात्र कुछ प्रतीकात्मक विरोध-प्रदर्शनों तक सीमित रहे। अतीत में भी इनके सामाजिक जनवादी, काउत्स्कीपंथी पूर्वजों ने यही महापाप किया था। दरअसल ये संशोधनवादी आज फासीवाद का जुझारू और कारगर विरोध कर ही नहीं सकते, क्योंकि ये "मानवीय चेहरे" वाले नवउदारवाद का और कीन्सियाई नुस्ख़ों वाले "कल्याणकारी राज्य" का विकल्प ही सुझाते हैं। आज पूँजीवादी ढाँचे में चूँकि इस विकल्प की सम्भावनाएँ बहुत कम हो गयी हैं, इसलिए पूँजीवाद के लिए भी ये संशोधनवादी काफी हद तक अप्रासंगिक हो गये हैं। बस इनकी एक ही भूमिका रह गयी है कि ये मज़दूर वर्ग को अर्थवाद और संसदवाद के दायरे में कैद रखकर उसकी वर्गचेतना को कुण्ठित करते रहें और वह काम ये करते रहेंगे। जब फासीवादी आतंक चरम पर होगा तो ये संशोधनवादी चुप्पी साधकर बैठ जायेंगे। अतीत में भी बाबरी मस्जिद गिराये जाने के आगे-पीछे फैले साम्प्रदायिक उन्माद का सवाल हो या फिर गुजरात में हफ़्तों चले बर्बर नरसंहार का, ये बस संसद में गत्ते की तलवारें भाँजते रहे और टीवी और अख़बारों में बयानबाज़ियाँ करते रहे। ना इनके कलेजे में इतना दम है और ना ही इनकी ये औक़ात रह गयी है कि ये फासीवादी गिरोहों और लम्पटों के हुजूमों से आमने-सामने की लड़ाई लड़ने के लिए लोगों को सड़कों पर उतार सकें। इन्हीं की तर्ज़ पर काग़ज़ी बात बहादुरी करने वाले छद्म वामपंथी बुद्धिजीवियों में से बहुतेरे या तो घरों में दुबक जायेंगे। बहुत से छद्म वामपंथी बुद्धिजीवियों को तो फासीवाद का ख़तरा इसलिए ज़्यादा सता रहा है क्योंकि कांग्रेस या सपा शासन में विभिन्न संस्थाओं-अकादमियों आदि में घुसकर सत्ता की मलाई चाटने का जो जुगाड़ ये लगा लिया करते थे, या फिर टीवी चैनलों आदि पर चेहरे दिखाकर जो कमाई हो जाया करती थी उसके रास्ते अब बन्द हो जायेंगे। अब योजनाबद्ध ढंग से हर जगह संघ परिवार के विश्वस्त लोगों को बैठाया जायेगा और किसी भी तरह का "वाम" लेबल लगे हुए लोगों को छाँट-छाँटकर बाहर किया जायेगा। ऐसे में आश्चर्य नहीं कि कुछ तथाकथित वाम बुद्धिजीवी चोला बदल लें या माफ़ीनामा भी लिख डालें। इतिहास में ऐसी मिसालों की कमी नहीं है।

निश्चय ही फासीवादी माहौल में क्रान्तिकारी शक्तियों के प्रचार एवं संगठन के कामों का बुर्जुआ जनवादी स्पेस सिकुड़ जायेगा, लेकिन इसका दूसरा पक्ष यह होगा कि नवउदारवादी नीतियों के बेरोकटोक और तेज़ अमल तथा हर प्रतिरोध को कुचलने की कोशिशों के चलते पूँजीवादी संरचना के सभी अन्तरविरोध उग्र से उग्रतर होते चले जायेंगे। मज़दूर वर्ग और समूची मेहनतकश जनता रीढ़विहीन गुलामों की तरह सबकुछ झेलती नहीं रहेगी। अन्ततोगत्वा वह सड़कों पर उतरेगी। व्यापक मज़दूर उभारों की परिस्थितियाँ तैयार होंगी। यदि इन्हें नेतृत्व देने वाली क्रान्तिकारी शक्तियाँ तैयार रहेंगी और साहस के साथ ऐसे उभारों में शामिल होकर उनकी अगुवाई अपने हाथ में लेंगी तो क्रान्तिकारी संकट की उन सम्भावित परिस्थितियों में बेहतर से बेहतर इस्तेमाल करके संघर्ष को व्यापक बनाने और सही दिशा देने का काम किया जा सकेगा। अपने देश मे और और पूरी दुनिया में बुर्जुआ जनवाद का क्षरण और नव फासीवादी ताक़तों का उभार दूरगामी तौर पर नयी क्रान्तिकारी सम्भावनाओं के विस्फोट की दिशा में भी संकेत कर रहा है।

आने वाला समय मेहनतकश जनता और क्रान्तिकारी शक्तियों के लिए कठिन और चुनौतीपूर्ण है। हमें राज्यसत्ता के दमन का ही नहीं, सड़कों पर फासीवादी गुण्डा गिरोहों का भी सामना करने के लिए तैयार रहना पड़ेगा। रास्ता सिर्फ एक है। हमें ज़मीनी स्तर पर ग़रीबों और मज़दूरों के बीच अपना आधार मज़बूत बनाना होगा। बिखरी हुई मज़दूर आबादी को जुझारू यूनियनों में संगठित करने के अतिरिक्त उनके विभिन्न प्रकार के जनसंगठन, मंच, जुझारू स्वयंसेवक दस्ते, चौकसी दस्ते आदि तैयार करने होंगे। आज जो भी वाम जनवादी शक्तियाँ वास्तव में फासीवादी चुनौती से जूझने का जज़्बा और दमख़म रखती हैं, उन्हें छोटे-छोटे मतभेद भुलाकर एकजुट हो जाना चाहिए। हमें भूलना नहीं चाहिए कि इतिहास में मज़दूर वर्ग की फौलादी मुट्ठी ने हमेशा ही फासीवाद को चकनाचूर किया है, आने वाला समय भी इसका अपवाद नहीं होगा। हमें अपनी भरपूर ताक़त के साथ इसकी तैयारी में जुट जाना चाहिए।

एक विस्मृत गौरवशाली विरासत

लंदन की सड़कों पर फासिस्ट गुण्डों और उन्हीं का साथ देने वाली पुलिस से टक्कर लेते कम्युनिस्ट (1936)

फासीवाद के विरुद्ध 1920 और 1930 के दशक में पूरे यूरोप में जिन लोगों ने सर्वाधिक जुझारू ढंग से जनता को लामबन्द किया था और फासिस्टों से सड़कों पर लोहा लिया था, वे कम्युनिस्ट ही थे। 1934 से 1939 के बीच ब्रिटेन की कम्युनिस्ट पार्टी ने जो फासीवाद-विरोधी मुहिम चलाई थी, उसका एक गौरवशाली इतिहास रहा है, जो आज बहुतेरे लोग नहीं जानते। 'केबल स्ट्रीट की लड़ाई' (4 अक्टूबर, 1936) ऐसी ही एक ऐतिहासिक घटना थी। उस दिन 40,000 सदस्यों वाली ओसवाल्ड मोस्ले की 'ब्रिटिश यूनियन ऑफ फासिस्ट्स' लंदन के पूर्वी छोर से केबल स्ट्रीट और गार्डिनर्स कॉर्नर होते हुए (यह इलाका यहूदी बहुल था) एक मार्च निकाल रही थी। कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों की संख्या उस समय मात्र 11,500 थी, पर उन्होंने आनन-फानन में एक लाख लोगों का लामबन्द करके फासिस्ट मार्च के रास्ते को रोक कर दिया और बी.यू.एफ. के यहूदी अल्पसंख्यक विरोधी फासिस्ट गुण्डों को खदेड़ दिया। ये तस्वीरें 'केबल स्ट्रीट की लड़ाई' की ही हैं। फिल पिरैटिन ने अपनी पुस्तक 'अवर फ्लैग स्टेज़ रेड' (1948) में इस घटना का विस्तृत विवरण दिया है। उस समय कम्युनिस्ट पार्टी की ताकत संसदमार्गी वाम, सामाजिक जनवादियों और त्रात्स्कीवादियों (लेबर पार्टी और सोशलिस्ट वर्कर्स पार्टी आदि) से कम थी, पर जुझारू फासीवाद-विरोधी संघर्ष में अग्रणी भूमिका कम्युनिस्टों की ही थी। कम्युनिस्टों की 'पॉपुलर फ्रण्ट' की रणनीति को सुधारवादी बताने वाले त्रात्स्कीपंथी ब्रिटेन में अच्छी-खासी संख्या में थे, पर फासिस्टों के विरुद्ध सड़कों पर मोर्चा लेने के बजाय वे माँदों में दुबके रहे।

भारत में भी ऐसा नहीं लगता कि संसदीय वाम हिन्दुत्ववादी फासिस्टों से सड़क पर मोर्चा लेने के लिए तैयार है। ये संसद में ही 'तीसरा मोर्चा' वगैरह बनाकर गत्ते की तलवार भाँजते रहेंगे। याद करें, 1980 के दशक में पंजाब में खालिस्तानियों से मोर्चा कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों ने ही लिया था। आने वाले समय में हिन्दुत्ववादी फासिस्टों को सड़कों पर मुँहतोड़ जवाब देने की जिम्मेदारी भी उन्हीं के कन्धों पर होगी।

– 'देर रात के राग' ब्लॉग
nightraagas.blogspot.in से साभार

"जिस वर्ग के पास बड़े पैमाने पर लूटने-खसोटने की ताक़त होती है उसके पास सरकार को नियन्त्रित करने और अपनी लूट-खसोट को क़ानूनी जामा पहनाने की भी ताक़त होती है!"

– **यूजीन डेब्स** (अमेरिकी मज़दूर नेता, 1855-1926)

"पूँजीवादी समाज में स्वतन्त्रता हमेशा वैसी ही होती है जैसी वह प्राचीन यूनानी गणतन्त्रों के समय में होती थी : दास स्वामियों के लिए स्वतन्त्रता।"

– लेनिन

"नागरिक अवज्ञा हमारी समस्या नहीं है। हमारी समस्या है नागरिकों की आज्ञाकारिता। हमारी समस्या है कि दुनियाभर में लोग नेताओं के तानाशाही आदेशों का पालन करते रहे हैं...और इस आज्ञाकारिता के कारण करोड़ों लोग मारे गये हैं। ... हमारी समस्या यह है कि दुनियाभर में ग़रीबी, भुखमरी, अज्ञान, युद्ध और क्रूरता का सामना कर रहे लोग आज्ञाकारी बने हुए हैं। हमारी समस्या यह है कि लोग आज्ञाकारी हैं जबकि जेलें मामूली चोरों से भरी हुई हैं... बड़े चोर देश को चला रहे हैं। यही हमारी समस्या है।"

– **होवार्ड ज़िन्न** (प्रसिद्ध अमेरिकी जनपक्षधर इतिहासकार, 1922-2010)

यदि जनबल पर विश्वास है तो हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है। जनता की दुर्दम्य शक्ति ने, फ़ासिज़्म की काली घटाओं में, आशा के विद्युत का संचार किया है। वही अमोघ शक्ति हमारे भविष्य की भी गारण्टी है।

– राहुल सांकृत्यायन

हिटलर के तम्बू में

नागार्जुन

अब तक छिपे हुए थे उनके दाँत और नाख़ून ।
संस्कृति की भट्ठी में कच्चा गोश्त रहे थे भून ।
छाँट रहे थे अब तक बस वे बड़े-बड़े क़ानून ।
नहीं किसी को दिखता था दूधिया वस्त्र पर ख़ून ।
अब तक छिपे हुए थे उनके दाँत और नाख़ून ।
संस्कृति की भट्ठी में कच्चा गोश्त रहे थे भून ।

मायावी हैं, बड़े घाघ हैं, उन्हें न समझो मन्द ।
तक्षक ने सिखलाए उनको 'सर्प नृत्य' के छन्द ।
अजी, समझ लो उनका अपना नेता था जयचन्द ।
हिटलर के तम्बू में अब वे लगा रहे पैबन्द ।
मायावी हैं, बड़े घाघ हैं, उन्हें न समझो मन्द ।

पहले वे आये कम्युनिस्टों के लिए
और मैं कुछ नहीं बोला
क्योंकि मैं कम्युनिस्ट नहीं था।
फिर वे आये ट्रेड यूनियन वालों के लिए
और मैं कुछ नहीं बोला
क्योंकि मैं ट्रेड यूनियन में नहीं था।
फिर वे आये यहूदियों के लिए
और मैं कुछ नहीं बोला
क्योंकि मैं यहूदी नहीं था।
फिर वे मेरे लिए आये
और तब तक कोई नहीं बचा था
जो मेरे लिए बोलता।

● पास्टर निमोलर
(हिटलर के शासनकाल के एक कवि और फासीवाद विरोधी कार्यकर्ता)

डाक पंजीयन: SSP/LW/NP-319/2011-2013
प्रेषित डाकघर: आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि: दिनांक 20 प्रत्येक माह

भगाणा काण्ड : हरियाणा में बढ़ते दलित और स्त्री उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष की एक मिसाल

हरियाणा में पिछले एक दशक में दलित और स्त्री उत्पीड़न की घटनाओं में बेतहाशा वृद्धि हुई है। गोहाना, मिर्चपुर, झज्जर की घटनाओं के बाद पिछले 25 मार्च को हिसार जिले के भगाणा गाँव की चार दलित लड़कियों के साथ सामूहिक बलात्कार की दिल दहला देने वाली घटना घटी। इस घृणित कुकृत्य में गाँव के सरपंच के रिश्तेदार और दबंग जाट समुदाय के लोग शामिल हैं। यह घटना उन दलित परिवारों के साथ घटी है जिन्होंने इन दबंग जाटों द्वारा सामाजिक बहिष्कार की घोषणा किये जाने के बावजूद गाँव नहीं छोड़ा था, जबकि वहीं के अन्य दलित परिवार इस बहिष्कार की वजह से पिछले दो साल से गाँव के बाहर रहने पर मजबूर हैं।

इस घिनौने कर्म के बाद सरपंच ने पूरे परिवार को मार डालने की धमकी दी और पुलिस में रिपोर्ट करने से भी मना किया। लेकिन, लड़कियों के परिजन चुप नहीं बैठे। उन्होंने एफ.आई.आर. दर्ज करायी। ऐसे कई मामले हैं जिन्हें खाप पंचायतों और दबंग जाटों द्वारा डरा धमका कर दबा दिया जाता है। नम्बर वन हरियाणा का दावा करने वाली हरियाणा सरकार की असलियत उजागर हो चुकी है कि यह नम्बर वन सिर्फ धनी किसानों, कुलकों और नवधनाढ्य वर्ग के लोगों के लिए है। खेतिहर मज़दूरों और अपने श्रम को बेचकर जीनेवालों को वहाँ नर्क से भी बदतर हालात में रहने पर मजबूर किया जाता है। रिपोर्ट लिखे जाने तक दिल्ली के जन्तर-मन्तर पर पिछले तीन सप्ताह से न्याय की आस में यह दलित परिवार धरने पर बैठा है। खुद बलात्कार की शिकार बच्चियाँ धरने पर बैठी हैं लेकिन सरकार से लेकर न्यायपालिका और मीडिया तक किसी के कान पर जूँ नहीं रेंगी।

विभिन्न संगठनों और न्यायप्रिय छात्रों-युवाओं और नागरिकों की पहल पर गठित 'भगाणा काण्ड संघर्ष समिति' के बैनर तले सत्ताईस अप्रैल को जन्तर-मन्तर पर विरोध प्रदर्शन किया गया और एक प्रतिनिधिमण्डल ने गृहमंत्री सुशील कुमार शिंदे से मिलकर ज्ञापन सौंपा जिसमें अपराधियों को फाँसी, लड़कियों को मुआवज़ा और सरकारी सुरक्षा के साथ दलित परिवारों के पुनर्वास जैसी माँगें शामिल हैं। लेकिन अभी तक सरकार और प्रशासन की ओर से इसका कोई संज्ञान नहीं लिया गया है जो साफ दिखाता है कि पुलिस और क़ानून धन्नासेठों और पूँजीपतियों की जेब में रहते हैं। दरअसल पूँजीवादी जनतंत्र जनता के लिये दमनतंत्र के अलावा कुछ नहीं है।

27 अप्रैल को जन्तर-मन्तर पर धरने पर बैठे भगाणा सामूहिक बलात्कार काण्ड पीड़ितों के समर्थन में वामधारा सहित कई अन्य संगठनों का संयुक्त विरोध-प्रदर्शन एक आगे का क़दम ज़रूर है, लेकिन इसने कुछ महत्वपूर्ण सवालों को भी सामने ला खड़ा किया है। यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि सत्ता प्रतिष्ठानों, मीडिया और

चुनावी पार्टियों के जनविरोधी चरित्र को उजागर किया जाये। वे तो पहले से ही नंगे हैं। हमारे सामने सबसे महत्व का सवाल यह है कि इस आन्दोलन को व्यावहारिक कैसे बनाया जाये? इसे किस प्रकार व्यापक आधार पर संगठित किया जाये और आगे कैसे बढ़ाया जाये?

सबसे पहले तो हमें यह समझना और स्वीकार करना होगा कि आन्दोलन का सवाल किताबी या अकादमिक सवाल नहीं है। कुछ जुमले, कुछ गरमागरम हवाबाज़ी और सामान्य सूत्रीकरण आन्दोलन की ठोस समस्याओं का हल नहीं हुआ करते। इसे अकादमिक दृष्टिकोण से केवल वही लोग देख सकते हैं जो यदा-कदा किताबों के पन्नों से निकलकर आन्दोलनों में शिरकत किया करते हैं। हम पहले ही स्पष्ट कर दें कि हमारा मकसद उनकी नीयत या भावना पर सवाल उठाना नहीं वरन् उनकी पद्धति के दोष को इंगित करना है।

हमारा मानना है कि इस घटना के तीन पहलू हैं। सबसे पहले यह स्त्रियों के दमन और बर्बर उत्पीड़न से जुड़ी हुई है। दूसरे, इसका जातिगत पहलू है और चूँकि पीड़ित खेत मज़दूर हैं इसीलिए यह मज़दूर दमन-उत्पीड़न की भी घटना है। ऐसे में सबसे पहले इसे आधी आबादी के दमन-उत्पीड़न के तौर पर देखना-समझना होगा और मज़दूर संघर्षों के मुद्दों से जोड़ना होगा। जहाँ तक इसके जातिगत पहलू का प्रश्न है, निश्चय ही यह 'समान नागरिक अधिकार' का उल्लंघन है और उस हद तक इसका जनवादी अधिकार आन्दोलन का चरित्र भी बनता है, लेकिन इसे एक जाति-विशेष का मसला बना देना या फिर जाति के पहलू पर अतिशय ज़ोर देना एक संकीर्णतावादी दृष्टिकोण होगा। ऐसा दृष्टिकोण इस आन्दोलन की समस्त सम्भावनाओं को बेहद संकरे दायरे में क़ैद करेगा और अन्तत: घातक साबित होगा। दलित उत्पीड़न को केवल दलितों की लड़ाई या ब्राह्मणवादी वर्चस्व का नतीजा समझना और बताना एक अवैज्ञानिक और संकीर्णतावादी नज़रिया होगा। यह व्यापक जनवादी अधिकार आन्दोलन का मसला है। यह पूँजीवादी व्यवस्था विरोधी संघर्ष का मसला है। इसी के साथ अन्त में यह भी जोड़ना चाहेंगे कि अलग-अलग ग्रुपों, संगठनों की आपसी खींचातानी न सिर्फ़ अशोभन दृश्य पैदा करती है, बल्कि पूरे आन्दोलन को एक संयुक्त कमान में चलाने की पूरी प्रक्रिया को ही नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

अब व्यावहारिक प्रश्न यह है कि इस आन्दोलन को आगे कैसे चलाया जाये और एक व्यापक आधार कैसे दिया जाये! महज़ जन्तर-मन्तर से संसद मार्ग तक प्रदर्शन की सीमाओं को हम सभी जानते हैं। हरियाणा और दिल्ली में लोकसभा चुनाव हो चुके हैं, इसलिए भी चुनावी पार्टियों को भगाणा काण्ड जैसी घटनाओं पर फ़िलहाल ध्यान देने की ज़रूरत नहीं महसूस हो रही है। इसलिए अब हरियाणा भवन पर एक और जुझारू प्रदर्शन के बाद आन्दोलन का दायरा हरियाणा में स्थानान्तरित कर देना चाहिए। हरियाणा के हर ज़िला मुख्यालय पर भगाणा के पीड़ितों और समर्थक साथियों की टीमें संगठित करके प्रदर्शन किये जाने चाहिए और पर्चे बाँटे जाने चाहिए। यह घटना दलित उत्पीड़न के नाते जनवादी अधिकार का प्रश्न है, साथ ही यह स्त्री उत्पीड़न और मज़दूर उत्पीड़न का भी प्रश्न है, अत: सभी इंसाफ़पसन्द और जनवादी चेतना वाले नागरिकों से साथ आने का आग्रह किया जाना चाहिए। हिसार ज़िला मुख्यालय पर जारी प्रदर्शन के अतिरिक्त रोहतक में मुख्यमंत्री भूपिन्दर सिंह हुड्डा के निवास पर भी धरना-प्रदर्शन किया जाना चाहिए।

बिगुल मज़दूर दस्ता और नौजवान भारत सभा की ओर से दिल्ली के अलावा हरियाणा के जीन्द, कैथल, नरवाना जैसी जगहों पर इस मामले को लेकर नुक्कड़ सभाएँ करते हुए हज़ारों की संख्या में पर्चे बाँटे गये। दिल्ली के मज़दूर इलाक़ों में तो निश्चय ही इस मुद्दे पर आबादी का व्यापक समर्थन मिला, हरियाणा में भी उन्हें ज़्यादातर जगहों पर लोगों का समर्थन मिला। कई जगह समृद्ध जाटों और सवर्ण अभिमान में ऐंठे लोगों से उलझना भी पड़ा लेकिन आम तौर पर सभी समुदायों के युवाओं ने इंसाफ़ के लिए इस मुहिम का समर्थन किया।

बिगुल मज़दूर दस्ता ने आन्दोलन को इन ठोस माँगों पर केन्द्रित करने का सुझाव दिया है :

(1) भगाणा के सभी आरोपियों की अविलम्ब गिरफ़्तारी की जाये और फ़ास्ट ट्रैक कोर्ट में मुकदमा चलाकर त्वरित न्याय किया जाये। (2) इस पूरे मामले की उच्चतम न्यायालय द्वारा कमेटी गठित करके न्यायिक जाँच करायी जाये या केन्द्रीय एजेंसी द्वारा न्यायिक जाँच करायी जाये। (3) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति आयोग तथा महिला आयोग भी इस मामले में अविलम्ब कार्यवाई करे। साथ ही, इन दोनों आयोगों के क़ानूनी अधिकारों को बढ़ाकर इन्हें प्रभावी बनाने की भी माँग उठायी जानी चाहिए। (4) हरियाणा में नवम्बर 2014 में विधानसभा चुनाव होने हैं। अत: सभी चुनावी पार्टियों को यह चेतावनी दी जानी चाहिए कि यदि इस मामले में यथाशीघ्र न्याय नहीं मिला तो पूरे हरियाणा के दलित मेहनतकश चुनाव का बहिष्कार करेंगे या 'नोटा' का बटन दबायेंगे और कोशिश की जायेगी कि अन्य मेहनतकश और इंसाफ़पसन्द नागरिक भी ऐसा ही करें। इस चेतावनी को अमल में लाने के लिए योजनाबद्ध व्यापक 'मोबिलाइज़ेशन' शुरू किया जाये।

– बेबी कुमारी

"बहुमत के शासन" की असलियत

लोकसभा चुनाव-2014 की कहानी, आँकड़ों की जुबानी...
कुल आबादी = 127 करोड़ कुल मतदाता = 82.7 करोड़
मतदान प्रतिशत = 66.4 %
यानी वोट डालने वाले = 55 करोड़
विजयी भाजपा गठबन्धन को मिले = 32 प्रतिशत मत (लगभग)
यानी सरकार चुनने वाले कुल मतदाता = 17.5 करोड़
और इन 17.5 करोड़ में कितने खरीदे गये, कितने जाति-धर्म आदि के नाम पर उकसाये गये और कितने धमकाये गये इसका आँकड़ा उपलब्ध नहीं है।
तो अब 17.5 करोड़ लोगों द्वारा चुनी गयी सरकार 127 करोड़ लोगों पर राज करेगी। यही है पिछले 62 वर्ष से जारी महान लोकतंत्र में "बहुमत" के शासन की असली तस्वीर।

– रूपिन्दर सिंह

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006